

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180991

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H 82

Accession No. G. H 1350

Author B 46 A

Title

This book should be returned on or before the date last
marked below.

अम्बपाली

[नाटक]

लेखक

श्रीरामवृत्त बेनीपुरी

प्रकाशक

पुस्तक-भंडार

पटना

प्रथम संस्करण
वसंत-पंचमी, २००५ वि०
(

मूल्य ३)

मुद्रक
श्री महादेव सहाय सिंह अष्टाना
हिमालय प्रेस, बाँकीपुर, पटना

भारतीय नटराज
भाई पृथ्वीराज कपूर
और
उनकी अन्यतम कलाकृति
पृथ्वी-थियेटर्स
को
सम्रेम

|

मेरी अम्बपाली

अपनी यह पहली नाट्य-कृति हिन्दी-पाठको के निकट रखते हुए मुझे संकोच नहीं हो रहा है—क्योंकि पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व ही इसे इतनी प्रशंसा और प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है कि मैं स्वयं आश्चर्य-चकित हूँ ।

अम्बपाली बौद्धयुग की एक अतिप्रसिद्ध नारी है । उसको लेकर भारतीय भाषाओं में कितनी ही रचनाये हुई हैं—काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास के रूप में । किन्तु मैंने इस रचना-द्वारा अपना नाम सात सवारों में लिखाने की कोशिश नहीं की है ।

क्योंकि, यह मेरी आदत में शामिल नहीं है । अपने पैरों का वजन और वकत मुझे मालूम है, लेकिन, किसी के पद-चिह्न मात्र पर चलना मैं कलाकार की मौत मानता हूँ ।

बचपन में ही मेरा भुकाव नाटक-रचना की ओर हुआ था । हाईस्कूल के चौथे या तीसरे वर्ष में ही मैंने एक नाटक लिखा था । लैंगोटिया गारों को मुनाया था ; उन्हे पसन्द आया, उसके खेलने का आयोजन भी हुआ और एक मारवाडी दोस्त ने उसे छपवाने के लिए चार रुपये चंदा भी उगाहा था ।

लेकिन, बाद में मैं कवि बन गया, तब लेखक हुआ, फिर पत्रकार बनकर रह गया । किन्तु हजारीबाग सेन्ट्रल जेल के निश्चित एकांत में जब एक दिन बादल धिर आये कि अचानक मेरा नाटककार जग उठा ।

और, अपने पात्र के लिए अम्बपाली का चुनाव भी मेरे लिए स्वाभाविक ही था । जहाँ अम्बपाली का जन्म हुआ था, उसी भूमि ने मुझे भी उत्पन्न किया है और एक

पुरातत्वज्ञ ने तो यहाँ तक कह डाला है कि वृज्जियों के उन घ्राठ कुलों में से ही मेरा दश है, जिनकी संघशक्ति ने वैशाली को महानता और श्रमरता प्रदान की थी ।

किन्तु, क्या मेरी यह श्रम्बपाली पच्चीस सौ साल पहले रची गई विधाता की श्रम्बपाली का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकती है ?

विधाता की किसी कृति को जब कलाकार अपनी कलाकृति के लिए चुनता है, तब उसके कलात्मक रूप देने की प्रक्रिया में एक अजीब बात हो जाती है । विधाता की कृति धीरे-धीरे विलीन होने लगती है और समाप्त करते-न-करते कलाकार आश्चर्य से देखता है, एक दूसरी ही नवीन आकृति उसके सामने आ खड़ी है ।

और, यह कौन कहे कि सुन्दर कृति किसकी—विधाता की या कलाकार की ? वह जो पचास या सौ साल जीकर धूल में मिल गई, विधाता की वह शकुन्तला अच्छी ; या दो हजार साल के बाद भी जो जीवित है, कालिदास की वह शकुन्तला अच्छी !

पुरातत्वज्ञ मेरी इस श्रम्बपाली को इतिहास के पन्नों में अकित श्रम्बपाली से मिलावे, घटनाओं के तारतम्य में कुछ त्रुटियाँ पावे और मुझे गालियाँ भी दे ले, किन्तु मैं कहूँ, मुझे तो मेरी श्रम्बपाली ही सच्ची श्रम्बपाली प्रतीत हुई है । सच्ची और अच्छी भी—क्योंकि सत्य ही सुन्दर और सुन्दर ही सत्य है न ।

अब भी वे दिन भूले नहीं हैं, जब हजारीबाग सेन्ट्रल जेल के वार्ड न० १ के सामने, मधन पत्तियोवाली एक आस्र-विटपी के तने में उँगठकर, मैं अपनी श्रम्बपाली की रचना किया करता था—सामने फूलों से लदे मोतिये और गुलाब के भाङ थे, ऊपर आस्मान पर बादलों की घुड़दौड़ होती थी और इधर मेरी लेखनी कागज पर घुड़दौड़ करती थी । दिन-भर मैं जोकुछ रचता, शाम को मित्रों को सोल्लास सुनाता । उस पाषाण-पुरी में मेरी इस कुसुम-तनया की अलौकिक चरितावली उनके शुष्क हृदयों को हराभरा और रंगीन बना देती और वे मुझपर और मेरी इस कृति पर प्रशंसा की पुष्प-वृष्टि करने लगते । बेचारे विधाता को ऐतिहासिक श्रम्बपाली की सृष्टि करने में ऐसा सुन्दर वातावरण और ऐसा निराला प्रोत्साहन कहाँ प्राप्त हुआ होगा ?

अपनी श्रम्बपाली की सुन्दरता और पूर्णता पर मुझे पूर्णतः मन्तोष है ; श्रम्बपाली और वैशाली की आत्मा के चित्रण में, अपने जानते, मैंने कोई त्रुटि नहीं आने दी है । हाँ, प्रथम नाट्य-रचना होने के कारण इसमें टेक्निक की त्रुटियाँ हो सकती हैं—जिनके लिए क्षमा माँगने की जरूरत भी मैं महसूस नहीं करता, क्योंकि मेरे सहकर्मियों ने क्षमाप्रार्थना को भी एक बाजारू माल बना रखा है ।

आशीर्वाद दीजिये, कुछ ऐसी ही नाट्य-कृतियाँ मैं आपके सामने उपस्थित करने में समर्थ हो सकूँ ।

बेनीपुर
उमड़ते सावन की
एक बरसती अध-रतिया
१९४७

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

अम्बपाली

अम्बपाली

पहला अङ्क

१

[एक विस्तृत सघन अमराई—आम की हर डाल मजरियो से लदी, झुकी, भोरे जिनपर गुञ्जार कर रहे, वमती हवा जिनसे खेलवाड कर रही—आम के पेडों के बीच की जमीन में सरसों की फूली हुई क्यारियाँ—वृक्षों से लिपटी लताओं में जहाँ-तहाँ बन गई कुञ्जे—मुरज की किरणों में अभी सोना नहीं गया है—मजरियो, पत्तों, फूलों पर की ओस की बूंदें उनके स्पर्श में चमचम कर रही—चिड़ियों की चहचह में दूर में सुनाई पड़नेवाली कोयल की कुहू—

अमराई का मध्य—एक फैला हुआ आम का वृक्ष—उसकी एक मोटी डाल से एक झूला लटक रहा—जहाँ-तहाँ कमाचियों के बने पिजड़े झूल रहे—

एक किशोरी झूलेवाले वृक्ष की ओर आती दिखाई पड़ती है—कमर में प्राचीन ढंग का हरा परिधान, जो मुश्किल से घुटनों के नीचे पहुँचना है—कमर के ऊपर के हिस्से में सिर्फ स्तनों को ढकनेवाली पतली कचुकी, हरे रंग की ही—गले में फूलों की माला, जो कमर तक लटक रही—वालों के जूड़े में सरसों के फूल खोले—गुन्दर सुडौल गोरी बाँहों में सिर्फ फूलों के ही कंगन—हाथ में आम की मजरियों का गुच्छा—

अम्बपाली :

किशोरी उस पेड़ के नजदीक पहुँचती है—भुकी डालों की मजरियो को चूमती है—उमे देखते ही पिजड़ो से पछी चहचहा उठते हैं—उन पिजरवद्ध पंछियों के निकट जाकर उन्हे दुलराती हैं—सीटी देती हुई एक श्यामा के पिजड़े को लेती भूले के नजदीक आती है—धीरे-धीरे भूलती हुई, श्यामा की ओर देखती, वह गाती है]

मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी,

कोइलिया क्यों कूकी ?

कुहरे की भीनी चदरिया में सोई

धरती की ऊँघ रही सुधि खोई

किसने अचानक उसे गुदगुदाया

चारों तरफ छा गई जैसे माया—

सरसों की क्यारियाँ फूलीं

आमों में मंजरियाँ भूलीं,

भौरों की मामिनियाँ भूलीं,

पुरवाई मस्ती में यो सनसनाई -

कि भूली हुई बात फिर याद आई, कलेजे में हूकी,

कोइलिया कूकी,

मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी ।

[जब किशोरी गा रही, उसी स्वरूप वेशभूषा की दूसरी किशोरी बगल में आती है—पहली किशोरी गाने की तन्मयता में उमे नहीं देखती—वह धीरे-धीरे, दबे पांव आम के पेड़ के नजदीक आती और उसकी डाल पर चढ़ जाती है—ज्योंही गाना खत्म होता है, वह कोयल की बोली का अनुकरण कर कुहू-कुहू बोल उठती है—सगीतमग्ना किशोरी चकित होकर पेड़ की ओर देखती है—फिर भूले से उठकर आगे बढ़ती है—सहसा डाल की ओर देखकर हँस पड़ती है]

पहली किशोरी—ओहो, मधु ! उतर पगली ! वही मे कह रही थी, यह कोयल तो हो नहीं सकती । उतर, उतरती है, या.....

दूसरी किशोरी—या ! या क्या ? गा, गा—‘मेरी श्यामा ने वंशी’.....वाह री तेरी श्यामा !

पहली किशोरी—उतरती है, या डेले फेकू ?

दूसरी किशोरी—डेले उनपर फेक, जिनकी ‘भुली हुई बात फिर याद आई, कलेजे में हूकी ।’ वही डेले बर्दाश्त करेगे तेरे, मैं क्यों ?

पहली किशोरी—नहीं उतरती ?

दूसरी किशोरी—नहीं उतरती ।

[पहली किशोरी गुम्मे में इधर-उधर डेले ढूँढती है—फिर हाथ की मजरियों को ही फेंकने लगती है—निशाना चूकना जाता है—ऊपर की किशोरी ठहाकें लगाती जाती

है—अन्त में जब वह डाल पर चढ़ने का उपक्रम करती है, दूसरी किशोरी डाल में दोल मारकर जमीन पर आ जाती और झूले पर जाकर झूलती हुई गाती है—‘कोइलिया क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने ।’ तबतक पहली किशोरी भी उतर आती और झूले के नजदीक पहुँचती है—

पहली किशोरी—क्यों री, तू मुझे चिढ़ाती क्यों है ?

दूसरी किशोरी—(विना जवाब दिये ही वह गाती जाती है)—‘कोइलिया क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी.....’

पहली किशोरी—तू नहीं चुप होती ।

दूसरी किशोरी—(गाती जाती है)—‘क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने.....’

पहली किशोरी—(चिढ़कर उसे झकझोरती हुई) श्यामा की सास ।

दूसरी किशोरी—(नाक-भौ चढ़ाती हुई) कोयल की सौत ।

[दोनो, एक दूसरी को, आँखे गड़ा-गड़ाकर देखती हैं—देखते-ही-देखते दोनो ठठाकर हँस पड़ती और एक दूसरी में लिपट जाती हैं—लिपट जाती, एक दूसरी को चूमती—फिर दोनो झूले पर बैठ, पैर से धीरे-धीरे पेग देती, परस्पर आहिस्ता-आहिस्ता बातें करती हैं—

इनमें पहली किशोरी है अम्बपाली—दूसरी उसकी सखी मधूलिका—और यह है आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले की बात—आज जहाँ मुजफ्फरपुर का जिला है, वहाँ, उत्तर-विहार में, तब वृज्जियों का प्रजापति था, जो मधराज्य कहलाता था—ये दोनो वृज्जि-कुमारियाँ हैं—]

मधूलिका—अम्बे, आज भोर-भोर तूने कुछ देखा है क्या ? या रात में कोई सपना देखा था ?

अम्बपाली—तेरा मतलब ?

मधूलिका—मतलब है, तेरे इस गाने से ।

अम्बपाली—क्या बिना सपने देखे आदमी कुछ गा नहीं सकता ? और, सच पूछ, तो क्या ऐसी कोई भी रात होती है जिसमें आदमी सपने न देखे या ऐसा कोई भोर आता है जिसमें आदमी कोई रूप न देख पाये ?

मधूलिका—लेकिन, सपने-सपने में फर्क होता है और फर्क होता है रूप-रूप में, अम्बे । एक सपना होता है जिसमें आदमी उरकर आँखें खोल देता है और एक सपना ऐसा होता है, जिसमें जग जाने के बाद भी आदमी आँखें मूँद लेता है कि एक बार फिर उसकी कड़ियाँ जोड़ सके । समझी ?

अम्बपाली—हूँ ।

मधूलिका—यों ही एक रूप होता है जिसको देखकर आँखें मुड़ जाती या मुँद जाती हैं और दूसरा रूप होता है, जिसपर नजर पड़ते ही पलकें और बरौनियाँ काम करना छोड़ देती हैं, नजरों में टकटकी बँध जाती है और विमाग चिल्लाता है,

अम्बपाली :

आह, ये आँखें इतनी छोटी क्यों हुईं ? बड़ी होतीं, इन्हीं में उसे रख लेता !
समझी ?

अम्बपाली—हैं ।

मधूलिका—हैं ! हैं क्या ?

अम्बपाली—यही कि रूप-रूप में फर्क होता है और फर्क होता है सपने-सपने में । यही न ? लेकिन, एक बात कहूँ मधु, मुझे याद नहीं कि कभी बुरे सपने भी देखे होऊँ ; और, मेरी आँखों ने जिसे देखा, सुन्दर ही पाया ।

मधूलिका—(आश्चर्यमयी मुद्रा से) अच्छा ?

अम्बपाली—हाँ, हाँ, सच कहती हूँ, सखि ! न जाने क्या बात है, या तो कुरूप चीजें मेरी आँखों के सामने आती ही नहीं, या मेरी नज़रें उनका प्रतिबिम्ब ग्रहण ही नहीं करतीं.....

मधूलिका—(बात काटकर, किञ्चित् मुस्कान में) या तेरी नज़र पड़ते ही कुरूप भी रूपवान हो उठते हैं ?

अम्बपाली—दिल्ली की बात नहीं है, मधु ! मैंने आज तक दुनिया में सिर्फ सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य देखा है—निर्जीव प्रकृति से लेकर प्राणवान प्राणी तक ! और, सपने ? उनकी बात मत पूछ । मधु, आदमी जागना क्यों चाहता है ? सोये रहो, सपने देखते रहो ; क्या इससे भी कोई दूसरी अधिक सुन्दर चीज हो सकती है ? जागरण ! (उपेक्षा के शब्दों में)—जागरण आदमी का वरदान है या अभिशाप, रे !

मधूलिका—आज तुझे यह क्या हो गया है ? तू किस सपने के लोक में है ?

अम्बपाली—सपने का लोक ! आह, मैं हमेशा उसी में रह पाती, मेरी मधु ! जब बच्ची थी, सपने में देखती—ररियों का देश, मणियों का द्वीप, उड़नखटोले की सैर ! और आजकल ? ज्योंही आँखें लगीं कि मैं पहुँच गई उस सुनहली घाटी में जहाँ इन्द्रधनुष का मेला लगा रहता है, जहाँ जबानी तितलियों के रूप में उड़ती रहती है ; या उस देवलोक में जहाँ सुनहले पंखवाले देवकुमार नीचन के पंखोंवाली आसराओं के अंगल-अंगल आगे-पीछे मँडराते फिरते हैं ; या कम-से-कम उस रूपदेश की राजसभा में जहाँ कर्तोंवाले राजकुमारों की भरमार है—जहाँ नृत्य है, संगीत है, और है... (अचानक मिहर उठती है) मधु, मधु, तू क्या ऐसे सपने नहीं देखती ?

मधूलिका—मैं देखती या नहीं देखती, बात मत बहला । बता, तूने रात भी क्या कुछ ऐसा ही सपना देखा है ?

अम्बपाली—रात जो देखा, उसकी मत पूछ ! उफ, बिल्कुल अद्भुत, अपूर्व ! उसकी याद से ही शर्म आती है, सखि !

मधूलिका—शर्म ! सपने में शर्म की कौन-सी बात री !

अम्बपाली—नहीं, मधु, ज़िद न कर । सचमुच उसकी याद से ही मैं शर्म से गड़ने लगती हूँ ।

मधूलिका—(व्यंग्य के शब्दों में) समझी, समझी, तभी तो भोर-भोर यह गीत ।
आखिर अचानक आकर उसने तुझे गुदागुदा ही दिया—‘किसने अचानक’... गुदगुदाया
.....’ (गाने का व्यंग्य करती है)

अम्बपाली—लेकिन, तेरा यह निशाना ठीक नहीं बँठा, मधु । यह वह बात नहीं,
जिसकी तू कल्पना भी कर सके ।

मधूलिका—मेरी कल्पना की रानी । मैं, और वहाँ तक पहुँच सकूँ ? खैर, बता,
तूने क्या देखा ?

अम्बपाली—तेरी जिब, अच्छा सुन (वह चकित नेत्रों से इधर-उधर देखनी है कि
कोई दूसरा तो नहीं है और फिर धीमे स्वर में कहने लगती है) रात देखा, कहीं अजीब
देश में पहुँच गई हूँ, जहाँ चारों ओर फूल-ही-फूल है । जिन्हे हम गूलर-पाकड़-पीपल
कहते हैं, उनमें भी फूल लगे हैं—चम्पा के, गुलाब के, पारिजात के । जमीन पर घास-
फूस की जगह फूलों की पंखड़ियाँ बिछी हैं और धूल की जगह पीत पराग बिखरा है ।
हवा में अनहद संगीत—वातावरण में अजीब रंगामेजी । सामने एक तालाब देखा,
जिसमें कमल के सहस्र-सहस्र फूल खिल रहे—लाल, श्वेत, पीत, नील । और, वर्षणोपम
निर्मल नील जल । मुझे गरमी महसूस हो रही थी । क्यों न तालाब में नहा लूँ ? इधर-
उधर देखा, कोई नहीं । मैंने भट कचुकी उतार दी, बाह्य परिधान खोलकर रख दिया ।
दौड़कर किनारे पहुँची । जल में कूदने के लिए भाँका, तो अपना सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब देखा ।
(सिहरती हुई) अपना ही प्रतिबिम्ब । लेकिन, उसे देखते ही, मधु, नसों में खून के एक
अजीब ज्वार का अनुभव हुआ और आधी बेहोशी में ही अपनेको पानी में फेंक दिया ।

मधूलिका—(विस्मय में) अजीब सपना ।

अम्बपाली—उसका अनोखापन तो अब आता है, रे । पानी में धँसकर मैं तैरने
लगी और बढ़ी एक नील कमल की ओर । किन्तु, यह क्या ? यह तो कलेंगीवाला राजकुमार
है और मुझे अपनी ओर आते देख वह मुस्करा रहा है । मैं चकित हुई । दूसरे कमलों
की ओर देखा, वैसे ही कलेंगीवाले राजकुमार, हजार-हजार । और, सब-के-सब मेरी ओर
देखकर तिरक मुस्करा नहीं रहे, बल्कि ठठा-ठठाकर हँस रहे । मैं नंगी—उफ, क्या करूँ,
कहाँ जाऊँ, कैसे बाहर होऊँ ? इससे तो डूब मरना अच्छा । डूब मरूँ—मरूँ—इसी
उम्र में ! तो ? तो ? डूबकी मारकर शर्म छिपानी चाही—एक डूबकी, दूसरी डूबकी ।
तीसरी डूबकी में मालूम हुआ, साँस घुट रही है । अच्छा हुआ, नींद टूट गई । जगो तो
पाया, पसीने-पसीने थी ।

मधूलिका—निस्सन्देह, विचित्र सपना देखा है, तूने । लेकिन, समझती है, इसका
मानी क्या है ?

अम्बपाली—क्या समझूँ ? एक दिन का सपना हो तो, कुछ समझा जाय । जिसकी
जिन्दगी ही सपने की है, वह किस-किस का मानी लगाये ।

मधूलिका—लेकिन इस सपने का तो खास महत्त्व है । वसंत के प्रथम दिन का
यह सपना साधारण सपनों में नहीं है ।

अम्बपाली :

अम्बपाली—तो क्या मानी है इसका ?

मधूलिका—वही, जो उस दिन ज्योतिषीजी ने तेरे हाथ की रेखाएँ देखकर कहा था—“तेरे चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटेगे।”

अम्बपाली—चुप, चुप ! मैं तो उसकी कल्पना से ही सिहर उठती हूँ, मधु ! “हजार-हजार राजकुमार !” उफ, वह भी कोई जिन्दगी होगी। मेरा तो अकेला.....

मधूलिका—“मेरा तो अकेला अरुणध्वज !” क्यों ? यही न कहना चाहती थी ? (रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराती है)

[एक कुञ्ज की ओर से कुछ शब्द, किमी के आने का पद-चाप-सा सुनाई पड़ता है—दोनों सखियाँ चौककर उस ओर देखनी हैं—पानी है, एक नौजवान चला आ रहा है—यह अरुणध्वज है—अङ्ग-अङ्ग गठा हुआ, गुपट, गुञ्जित—कटि से घुटने तक का पीत वस्त्र—पीठ पर तूगीर, कंधे से धनुष लटक रहा, हाथ में एक वाण—सिर पर घुँघराले लम्बे बाल जिनपर पीले पाटम्बर की पट्टी जिनमें कुछ फूल कलंगी की तरह झूल रहे—यौवन की साक्षात् प्रतिमा-ना दिखाई पड़ता है—

उसे देखते ही अम्बपाली सिटपिटा जाती है—मधूलिका उछल पड़ती है, जैसे उसे मुँहमाँगा वरदान मिला हो—“अरुण, खूब आये, भले आये, अच्छे आये।”—कहती दौड़कर आगे बढ़ती है और उसे भूले के नजदीक ले आती है—अरुण चकित-विस्मित उसका मुँह देखता है—]

मधूलिका—(अरुण से) अच्छा, अब तुम दोनों इस पर बैठो, (भूले की ओर इशारा करती) मैं जरा झुलाऊँगी। (अम्बपाली से) वह कौन-सा गाना है, अम्बे ! हाँ, हाँ, (सुर से) “मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी, कोइलिया क्यों कूकी।” (अपने चेहरे की ओर आश्चर्य से घूरते हुए अरुण से) तुम बैठते क्यों नहीं जी !

अरुणध्वज—यह क्या शरारत सूझी है तुम्हें, मधु !

मधूलिका—हाँ, मेरी शरारत ही तो ! यह (अम्बपाली की ओर मुखातिब होती) यहाँ अकेली-अकेली, वसंत के इस प्रथम प्रभात में “भूली हुई बात फिर याद आई, कलेजे में ठूकी !” गाया करे और आप चुपके-चुपके, होले-होले, झूलते-भटकते, इस कुंज में आ पहुँचे—भला मैं कौन होती हूँ जो बीच में दाल-भात में मूसरचंद बन बैठी ! जरूर मेरी शरारत है यह ! अच्छा महाशयजी, प्रणाम ! (अम्बपाली से) देवीजी, नमस्ते ! उभय-भूति इस अपराधिनी को क्षमा प्रदान कीजिए, मैं चली !

[बड़ी विनम्रता से दोनों को झुक-झुककर अभिवादन करती मधूलिका चलने का उपक्रम करती है—जब वह दोन्तीन कदम आगे बढ़ती है, अम्बपाली उसका हाथ पकड़ लेती है—]

अम्बपाली—शैतानी मत कर, ठहर !

मधूलिका—पहले शरारत, अब शैतानी ! राजा से सात गज बढ़के रानी ! (बड़ी विद्रूपता से उँगली अपने मुँह पर ले जाती है)

अरुणध्वज—अच्छा, भई ; तुम दोनों आपस में पीछे सुलभा लेना । मैं एक जरूरी बात कहने आया हूँ ।

मधूलिका—किसी जरूरी बात से तो आप आये ही हैं । बिना जरूरत के आप यहाँ क्यों आते भला ? कहाँ हमारा यह आनन्दग्राम, कहाँ आपकी मधुगोष्ठी ; बीच में वेगवती की धारा । तो भी आप रोज-रोज, बिना नागा, दोनों जून, जो यहाँ पैर थकाते, तकलीफ उठाते, पहुँच जाया करते हैं, सो क्या बिना किसी जरूरी बात के ही ! (जीभ काटती हुई) राम, राम !

अरुणध्वज—अरी, तू दिन-दिन वाचाल होती जाती है ! खैर, बोलो, तुम लोग चलती हो या नहीं !

मधूलिका—हाँ, हाँ, बोल अम्बे, तू जाती है या नहीं ! जा जा (अम्बा को खोदती है)

अम्बपाली—मैं पीढ़ी तुम्हें मधु ! (अरुण से) चले ? कहाँ ?

मधूलिका—(सुर में) “कुंजकुटीरे, यमुनातीरे !” (अलग हटकर खिलखिला पड़ती है)

अरुणध्वज—(बनाबटी गुस्से में) फिर वही नटखटपन ! (अम्बपाली से) वैशाली चलना है !

अम्बपाली—वैशाली ? वैशाली में क्या है ?

अरुणध्वज—फाल्गुनी उत्सव ! हम वृज्जियों का प्यारा राष्ट्रीय त्योहार ! किस वृज्जिकिशोरी और वृज्जिकुमार के मानस में इस उत्सव के नाम से ही भावनाएँ तरंग-पर-तरंग नहीं लेने लगती ! और, इस साल तो उसका विशेष महत्त्व है । वैशाली की राजनर्तकी देवी पुष्पगंधा अब अवकाश ग्रहण करने जा रही हैं, उनकी जगह इस साल नई राजनर्तकी का चुनाव

[मधूलिका चुनाव का नाम सुनते ही इन दोनों के नजदीक आती और आश्चर्यभरे स्वर में कहती है—]

मधूलिका—चुनाव ! इसी साल !

अरुणध्वज—हाँ-हाँ ; इसी साल ! देखे, वह कौन-सी सौभाग्यशालिनी वृज्जिकुमारी होती है, जिसके चरणों पर हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट

अम्बपाली—(अचानक चिल्ला उठती है) ऐ ! ऐ !

अरुणध्वज—क्यों ? यों सहम क्यों उठी ?

मधूलिका—मैं कहूँ, क्यों ?

अम्बपाली—मधु, मधु ! (हाथों से मना करती है)

अरुणध्वज—क्या बात है मधु !

मधूलिका—(विनोद-भाव से अम्बपाली को देखती) क्यों ?

अम्बपाली—(गुस्सा दिखाती) तू चुप रहती है, या

अम्बपाली :

मधूलिका—या तू पीट देगी, यही न ! तो, सुनिए, अरुणजी, उस दिन ज्योतिषीजी ने अम्बपाली को कहा—

[अम्बपाली मधूलिका की ओर लपकती है—अरुणध्वज उसका हाथ पकड़ लेता है—वह थोड़ी देर तक हाथ छड़ाने की कोशिश करती है—फिर गम्भीर होकर मधु से कहती है—]

अम्बपाली—अच्छा, बोल, क्या ज्योतिषी ने कहा ?

मधूलिका—तो, हाँ, सुनिए, अरुणजी, उस दिन ज्योतिषीजी ने अम्बपाली से कहा—“हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट तुम्हारे चरणों पर लोटेगे !” वह डरती है, कहीं वही न राजनर्तकी बना दी जाय !

अम्बपाली—(गुस्से में) डरती है ! डरूँ क्यों ? डरे चुगलखोर !

अरुणध्वज—तुम दोनों पगली हो। वहाँ बैशाली की ही इतनी न सुन्दरियाँ होंगी कि तुम गाँव-गँवइयों को कौन पूछे ? चलो, जरा देख आया जाय—नृत्य-गीत, खेल-तमाशे। जरा जी बहला आये।

मधूलिका—जहर जाइए। खेल-तमाशे, नृत्य-गीत—नृत्य-गीत में आप दोनों की जोड़ी भी कंसी अच्छी रहेगी ! मुझे काँटों में मत घसीटिए।

अरुणध्वज—फिर वही शरारत ! तुझे चलना ही पड़ेगा मधूलिके !

मधूलिका—अच्छा, शायद राधा की महत्ता के लिए कोई पिछलग्गी ललिता भी चाहिए ही।

अम्बपाली—तू चुप नहीं होती रे।

[अम्बपाली एक झटके में अरुणध्वज से हाथ छुड़ाकर मधूलिका को पीटने दौड़ती है—मधूलिका हँसती हुई भागती है—दोनों सखियों की भागदौड़ के पीछे-पीछे अरुणध्वज भी कुञ्ज की ओट हो जाता है—]

२

[वेगवती नदी की पतली धारा के किनारे बसा आनन्दग्राम—

बाँस के बने और फूल के छाये छोटे-छोटे घर—हर घर के आगे बाँस से ही बनाये चौकोर बाड़े, जिनके प्रवेशद्वार पर बाँस के ही तोरण—बाड़ों और तोरणों पर लिपटी हरी-हरी लताये फूलों से लदी—

कहीं-कहीं इन बाड़ों में छोटे-छोटे बछड़े बँधे—हरिन के छौने इस बाड़े से उस बाड़े में चौकड़ी भरते—जहाँ-तहाँ बच्चों के खेल और कलरव—कुछ युवतियाँ घड़े लिए वेगवती की ओर जाती—कई जगह बूढ़ियाँ चरखे कातती दिखाई पड़ती—

आनन्दग्राम का, ठीक नदी-किनारे, एक घर—वैसा ही बना, वैसा ही छाया, वैसा ही बाड़े, वैसा ही तोरण—

इस घर का आँगन—लिपा-पुता, स्वच्छ, निर्मल—आँगन के एक कोने में एक चबूतरा, जिसपर कुछ फूल और तुलसी के पौदे—बीच आँगन में, धूप में बैठी, एक बुढ़िया चरखा कात रही—सामने बरामदे पर एक किशोरी फूलों की माला गूँथ रही और गुनगुना रही—

इस किशोरी को पहचाना आपने ? यह अम्बपाली है—और बुढ़िया उसकी पालिका सुमना—सुमना चरखा कातती-कातती कई बार उसकी ओर नजर उठाकर देखती है, फिर जैसे चिढ़कर बोल उठती है—]

सुमना—बस, फूल, फूल, फूल ! दिन फूल, रात फूल ; सुबह फूल, शाम फूल !

अम्बपाली—(मिर नीचा किये माला गूँथती-गूँथती) दिन फूल, रात फूल ; सुबह फूल, शाम फूल !

सुमना—उलटे मेरा मुँह चिढ़ाती है। चिढ़ा ले। बस, कुछ दिन और ! फिर, जब किसी का घर बसायगी, तो आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

अम्बपाली—जब किसी का घर बसायगी, तब आटे-दाल का भाव... (अचानक गिर ऊँचाकर) अच्छा, आटे-दाल का आजकल क्या भाव है मौसी ?

सुमना—चुप नहीं होती, शोख लड़की ! यह जानती तो उसी बिन तेरा गला... (चरखे में एक हाथ छुड़ा अपने गले पर ले जाती और इस तरह इशारा करती है, मानों गला घोटना चाहती हो)

अम्बपाली—किस दिन मौसी ?

सुमना—जब तू छोटी बच्ची थी, तेरी माँ मर रही थी और तू कं-कं कर रही थी—क-क-क !

अम्बपाली—तो क्यों नहीं गला घोट दिया ? तुम घोट ही नहीं सकती, मेरी अच्छी मौसी !

सुमना—तब न घोंटा, अब बिना घोंटे न छोड़ूँगी। जब देखती हूँ, गुनगुना रही है, थिरक रही है, या फूल गूँथ रही है ! तू घर-गिरस्ती की कोई बात तो सीखती ही नहीं। जहाँ जायगी, आप जलेगी, मुझे गालियाँ सुनायगी।

अम्बपाली—मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाती, मौसी ! और किसकी मजाल जो तुम्हें गालियाँ दे ? (चेहरे पर अभिमान का स्पष्ट आभास)

सुमना—(तमककर) हट, सब लड़कियाँ ऐसी ही कहती हैं (मुह बनाकर) 'मैं—तुम्हें—छोड़कर—कहीं—नहीं जाती !' लेकिन जब नये घर में जाती है, फिर...

[इसी समय सजी-धजी मधूलिका लपकती हुई पहुँचनी है और सुमना की बात बीच ही में काटती हुई बोलती है—]

मधूलिका—नहीं, नहीं मौसी ! अम्बा सब लड़कियों—जैसी नहीं है। यह किसी के घर जायगी ? ऊह ! इसके चरणों पर तो हजार-हजार राजकुमार अपने मुकुट चढ़ायेंगे ! हाँ !

अम्बपाली :

सुमना—हाँ, हाँ, एक उम्र में सब लड़कियाँ राजकुमारों का ही सपना देखती हैं—हजार-हजार राजकुमार ! लाख-लाख देवकुमार ! लेकिन जब एक दिन हाड़-मांस का एक साधारण मानव-पुतला उनका हाथ पकड़ता और अपनी गिरस्ती की बक्की में गाढ़े जोतता है, तो उनके सारे सपने हवा हो जाते हैं !

अम्बपाली—मैं नहीं जुतूँगी, नहीं जुतूँगी, नहीं जुतूँगी !

सुमना—यह भी कह, मैं जिन्दगी-भर गाऊँगी, नाचूँगी, माला गूँथूँगी । कह ले, कह ले ; जितने दिन कह ले । कह ले, मुझे जला ले । बस, एक वसंत और आने की देर है !

मधूलिका—लेकिन, मौसी, क्या इस उम्र में आप ये सब नहीं करती थी ?

सुमना—करती थी क्यों नहीं रे ! (गान्त होती) मैं नाचने, गाने या फूल गूँथने से थोड़े मना करती हूँ ? लेकिन, तुम लोगों को कुछ और भी तो सीखना चाहिए न ? जिस घर में जाओ, बोझ हो के नहीं जाओ । गरी-जीवन की सार्थकता सिर्फ नाचने, गाने या फूल चुनने में नहीं है, बल्कि प्रद्विद्धिनी बनने में है । अगर प्रद्विद्धिनी बनने, गिरस्ती की आधी जिम्मेवारी उठाने की योग्यता तुममें नहीं हुई, तो अवश्य ही तुम्हें पुरुष की अनुचरी बनना पड़ेगा—हाँ, अनुचरी, पित्रलगी, दागी ! वह तुम्हें बिना दाती बनाये नहीं छोड़ेगा । तुम पुरुषों को नहीं पहचानती, प्यारी बेटियो !

मधूलिका—(चौककर) अरे !

सुमना—अरे क्या ? (बड़ी गम्भीर मुद्रा में) पुरुष वह नहीं हैं, जिसे तुम प्रलय से देखती हो—वह बाँका-बाँका छँला, घँघराले बाल, आँखों में रस, होठ के ऊपर मसं भीगी, चौड़ी छाती फुलाये, उलटे पुट्टीवाली भुजाएँ हिलाता, मस्ती में भूमता जाता हुआ, कामदेव का सखा । नहीं, यह पुरुष नहीं है । यह तो उसके ऊपर का ढाँचा है । पुरुष उसके भीतर है, जो हर कमजोर को अपना शिकार समझता है, हर खूबसूरती को अपनी खुराक—हाँ, सौन्दर्य उसका भोजन है, निर्बल उसका आखेट । वह भपट्टा नारकर चढ़ बैठता है, घायल कर देता है, फिर भर-पेट खा लेता और चल देता है—दूसरे शिकार और दूसरी खुराक की तलाश में ।

मधूलिका—(भयातुर हँकर) मौसी, मौसी ! यह तुम क्या कह रही हो ?

सुमना—मैं सच कह रही हूँ बेटी ! लेकिन इससे घबराना मत । यह पेटू और शिकारपसंद जानवर मजे में वश किया जा सकता है । हर पेटू जानवर की तरह यह पूरा आलसी है और यह आसानी से पालतू बनाया जा सकता है । बड़े-बड़े अपइधत वीर पुरुषों को, नारी ने, भालू की तरह, उसके नयने में रस्सी डालकर, नचागा है । वह खूँखार जानवर तायैई-तायैई करके नाचा है और दुनिया आश्चर्य से यह तमाशा देखती रही है !

मधूलिका—उफ, मैं दासी बनने की कल्पना से ही कांप जाती हूँ मौसी ! मुझे पुरुषों को वश करने की यह कला निखला देना, मेरी अच्छी मौगी ! (अम्बपाली ने) क्यो अम्बे, तू नहीं सीखेगी ?

अम्बपाली—तू सीख, मैं उसकी जरूरत नहीं महसूस करती। मैं सिर्फ गाऊँगी, नाचूँगी, माला गूँथूँगी और कोई मुझे दासी बना नहीं सकता। (उसके चेहरे पर अभिमान की लाली दोड़ जाती है)

सुमना—देखती है, मधु, इसका अभिमान ? (अम्बपाली से) लेकिन यह अभिमान नहीं है, अम्बे, आत्मबंधना है ! मैंने तुझे पाला है, पोसा है, गोद खेलाया है, चलना सिखाया है। मुझे नियुती को तूने सन्तान-मुख दिया है। मैं तुझे कोई अभिशाप देना नहीं चाहती। लेकिन, अभिमान ! अभिमान का फल.....

[उसका गला भर आता है— उसकी आँखों में आँसू छलक आते हैं—उत्तेजना में वह चरखा बंद कर देती और उसे सम्हालने लगती है—]

मधूलिका—मौसी, मौसी, तू गुस्से में आ गई ? (अम्बपाली से) अम्बे, यह तेरी हरकत अच्छी नहीं। देख, देख, मौसी की आँखें—

[मधूलिका, चरखा सम्हालती हुई सुमना के निकट, झुक जाती और उसका हाथ पकड़ती है—अम्बपाली फूल छोड़कर झटपट उठती और सुमना के निकट दौड़ती है—कुछ फूल आँगन में बिखर जाते हैं—अम्बपाली सुमना के गले से लिपट जाती है—सुमना एकाध बार गला छुड़ाने की कोशिश करती है—किन्तु ज्योही अम्बपाली के भर्राये चेहरे को देखती है, उसका गुस्मा काफूर हो जाता है, वह कह उठती है—]

सुमना—भोली लड़की ! अरे, यह क्या ? (ठुड्डी पकड़नी) तू उदास क्यों हो रही ? यों ही जरा कह दिया। आह, तू माँ का दिल जान पाती !

[इतना कह वह उसका माथा चूमने लगती है—उधर बाहर घर-घर और टप-टप की आवाज होती है—और तुरंत ही अरुणध्वज आँगन में हँसता हुआ घूमता है—सुमना को अभिवादन कर वह दोनों सखियों की ओर मुखातिब होकर कहता है—]

अरुणध्वज—बाह ! तुम लोग अभी तैयार भी नहीं हुई ?

सुमना—क्या है ? कहाँ के लिए, अरुण ?

मधूलिका—मौसी, उस दिन कहा था न तुम्हें ? हम बेशाली जाना चाहते हैं। आज ही जाना है। (अम्बपाली से) क्या तूने मौसी से नहीं कहा था, अम्बे ?

सुमना—ओहो, तभी आज भोर से ही मालाएँ गूँथी जा रही हैं। (अम्बपाली को ठुड्डी पकड़ती हुई) मेरी पगली, तूने मुझसे कहा क्यों नहीं ?

अम्बपाली—मैं नहीं जाती !

सुमना—नहीं जाती ? क्यों नहीं जायगी, रे ! जा जा, जरा जी बहला आ। तेरी उम्र की थी, हम भी जाया करती थीं। फाल्गुनी उत्सव ? यह तो हम वृज्जियों का महामेला है। कौन ऐसी वृज्जिकुमारी होगी, जो वहाँ जाने को लालायित न हो। जा परिधान बदल ले, प्रसाधन कर ले। (अरुण से) और अरुण, देखना, मेरी अम्बा बिल्कुल बालिका है। जरा होशियारी से मेले में रखना !

अम्बपाली—(अनवाकर) मेरी तबीयत अच्छी नहीं ; मैं नहीं जाऊँगी।

अम्बपाली :

सुमना—बस, फिर जिद। देखता है न तू अरुण, जरा मुझे गुस्ता आया और यह मान कर बैठे। फेंकी तुरन्त निजाज ! (मधूलिका में) मधू, क्या देखती है, जा, जल्द इसका परिधान ठीक कर दे। ओहो ! मधूलिका को मिर में पेर तब गिटारती हुई) मैंने ध्यान ही नहीं दिया था, तू इसी से सज-सजाकर आई है।

[मधूलिका अम्बपाली को घसीटकर घर में ले जाती है—अरुणध्वज सुमना के नजदीक बैठ जाता है—सुमना फिर बरखा बानती हुई उसमें वाते करती है—]

सुमना—तू कितने साल का हुआ रे, अरुण !

अरुणध्वज—माँ कहती थी, इक्कीसवाँ जा रहा है।

सुमना—मेरी अम्बा का भी यह सोलहवाँ है।

अरुणध्वज—(बड़ी गानगी से) कवियों ने इसे ही न षोडशी कहा है, मौसी !

सुमना—हाँ, हाँ, यही षोडशी !—जब जवानी बचपन की खिड़की से बाहर की दुनिया को झाँकती है। अजीब उम्र है यह, अरुण !—जब संसार की सब चीजे चंचल, नृत्यशील, रंगीन और संगीतमय दिखाई पड़ती है। जब लड़कियाँ समझ नहीं पातीं, वे क्या है ? प्रदर्शन जब उनका एकमात्र मनोरथ होता है और प्रसाधन एकमात्र पेशा।

अरुणध्वज—लेकिन अम्बा को तो तुम्हीं ने अभी-अभी प्रसाधन के लिए प्रेरित किया है।

सुमना—किया है, क्यों ? समझे ? हर मादा जानवर की तरह नारी भी अपने को नर से हीन अनुभव करती है। इस हीनता को छिपाने के लिए ही वह प्रसाधन की ओर प्रवृत्त होती है। हम नारियों की साज-सिगार की प्रवृत्ति हमारी हीनता की सूचक है, अरुण ! यह हीनता तब दूर होती है, जब नारी में मातृत्व आता है—वह बिल्कुल बबल जाती है, महामहिमान्वित हो जाती है। मातृत्व नारीत्व का चरम उत्कर्ष है। (कहते-कहते उसका चेहरा रक्ताभ गम्भीर हो उठता है, उसकी आंखें मुँदने-भी लगती हैं, थोड़ी देर के भावावेश के बाद—) अच्छा, तेरी माँ अब कैसी है, अरुण !

अरुणध्वज—प्रछड़ी ही है ; हाँ, जबतक तबीयत कुछ सुस्त हो जाया करती है।

सुमना—तो तू वधू क्यों नहीं लाता ? बेचारी की सेवा वह करती। अब तो तू सयाना हुआ, रे !

अरुणध्वज—बधू क्या यों ही मारी-मारी फिरती है मौसी ?

सुमना—अरे, इसी फाल्गुनी उत्सव में देखना। कितने जोड़े लगते हैं वहाँ ! मेरी लगन भी वहीं लगी थी। हाँ, हाँ, तू अब व्याह कर ले। एक-दो साल में तो अम्बा के लिए भी वर चाहिए ही।

[प्रसाधन-शृङ्गार से सज्जित अम्बपाली को लिये-दिये मधूलिका आंगन में आती है—उसका रूप देखकर अरुण को टकटकी बँध जाती है—सुमना उगे देखते ही खिल पड़ती है, बोलती है—]

सुमना—अरुण बेटा, मेरी अम्बा-ऐसी सुन्दरी समूचे वृजिसंघ में नहीं मिल सकती। तू वैशाली के इस फाल्गुनी उत्सव में देख लेना।

मधूलिका—(धीरे से) तब तो यह जरूर ही राजनर्तकी चुनी जायगी ।

सुमना—यह तू क्या बोली, मधु ।

अम्बपाली—(जो मधूलिका की बात सुन चुकी है, खीझ में) मैं बेशाली नहीं जाती ।

मधूलिका—बाह, नहीं जाती । चलना ही पड़ेगा, हाँ—

मधूलिका अम्बपाली की बाँह पकड़कर उसे घसीटती, घर के बाहर, तोरण के पास ले आती है—पीछे-पीछे सुमना और अरुण है—तोरण के सामने अरुण का रथ खड़ा है—वह आगे बढ़कर घोड़े की रास सम्हालता है—अम्बपाली को आगे ठेलकर मधूलिका भी रथ पर जा चढ़ती है—अरुण भी रथ पर आ रहता है—तीनों सुमना को अभिवादन करते हैं—

सुमना—देखना, अरुण ! मेरी अम्बा भोली है ; कही भीड़ में खो न जाय ।

बाड़े मरौटे में आगे बढ़ते हैं—अम्बपाली निर घुमाकर बार-बार सुमना की ओर देखती है—सुमना टकटकी लगाये रथ को देखती रहती है—उसके मुँह में निकल पड़ता है—

सुमना—भोली बच्ची ।

३

[आदिकवि वाल्मीकि द्वारा प्रशंसित अपनी विशालता और भव्यता से स्वर्ग की गरिमा को भी पराजित करनेवाली विशाला वैशाली नगरी—उसमें वृज्जियों का वह भव्य दिव्य 'सथागार', जिसमें उनके मध के ७,७०७ राजा एकत्र होकर समय-समय पर परामर्श और निर्णय करते—

सथागार के विशाल प्रासाद के ऊपर के तोरण पर एक विशाल सिंह-मूर्ति, जो एक पैर उठाये, मानो झपट्टा मारना चाह रहा—उसके दोनों ओर दो गज-मूर्तियाँ जिनके मुँह उठकर ठीक सिंह-मूर्ति के ऊपर, आपस में जा मिलते हैं—मुँह के इस मिलने की जगह में एक लम्बा स्तम्भ जिसपर वृज्जियों की राष्ट्रीय पताका लहरा रही—

लाल रंग की वह पताका जिसपर उजली सिंह-मूर्ति अंकित—

सथागार पर पवित्र से, तोरण से चार एक तरफ, चार दूसरी तरफ, कुल आठ गुम्बद—इन गुम्बदों के रंग क्रमशः नील, पीत, हरित, मजिष्ट, लोहित, श्वेत, अवदात और व्यायुक्त, जो वृज्जियों के आठ कुलों के सूचक हैं—

सथागार के नौबतखाने में तरह-तरह के बाजे बजकर दिग्दिगन्त को मुखरित कर रहे हैं—

और, सथागार के सामने के विस्तृत मैदान में, पहले जहाँ वैशाली का बाजार लगा करता, आज फाल्गुनी-उत्सव की तैयारियाँ हैं—

वृत्ताकार बनी है यह उत्सव-भूमि—वृत्त के बीच में ऊँची रंगभूमि है, जहाँ युवक-युवतियों का नृत्य-गान हो रहा—रंगभूमि को केन्द्र मानकर समूचा वृत्त आठ भागों

अम्बपाली :

में विभक्त किया गया है—जहा की दुकानें, परिधान, रथ आदि उपर्युक्त आठ रंगों के ही—
फूलों और मोमरस की दुकानों पर सब से अधिक भीड़—

प्रतापन-शृङ्गार में आभूषण-गुक्क-गुवतियों का अनूपम जमघट—गुवकों के कामदार
कटिपट और लम्बे बावों को भेंदारनेवाली जरदार पट्टियाँ—गुवतियों के रशीन
परिधान और कचुकियों पर चकमक गोटे-बूटे—फूलों के आभूषणों और मालाओं से
दानों लदे-से—

रगभूमि से नृत्य-संगीत की धारा प्रवाहित हो आठों भागों को जैसे डुबो देना
चाहती हो—एवके पैरों में नृत्य की गति, सब के स्वर में संगीत का मुर—एक मोहक
मादक उत्तेजना से वायुमण्डल व्याप्त—

इसी वातावरण में, बीच में अरुणध्वज और उसके दाहिने अम्बपाली, बायें मधूलिका,
तीनों मस्त हो तमाशों देख रहे—जिसकी नजर अम्बपाली पर पड़ती, वह चौक उठता,
टकटकी लगाकर उसे देखता रह जाता—उनकी यह भावभंगिमा अम्बपाली को व्याकुल कर
देती है—वह भीड़ से अलग हटकर अरुण से कहती है—

अम्बपाली—अरुण, अब चलो, कहीं विश्राम करे। मैं थक गई।

अरुणध्वज—थक गई ? वाह, अभी देखा क्या जो थक गई। अभी तो सारा
देखने को धरा पड़ा है।

अम्बपाली—मैं अब नहीं देखना चाहती।

अरुणध्वज—क्यों ?

अम्बपाली—ये लोग अच्छे नहीं दिखाई देते। सब यों घूरते हैं, जैसे आँखों से
निगल जायेंगे।

मधूलिका—(चौकती-सी) आँखों से निगल जायेंगे ?

अम्बपाली—हाँ, हाँ, आँखों से निगल जायेंगे। मैं तो इन्हें देखते ही काँप उठती
हूँ, मधु ! ये आँखें हैं या (अरुण से) नहीं-नहीं, अरुण, चलो। मैं बाज आई
इस देखने से।

मधूलिका—(व्यग्न से) या दिखाने से ! मेरी रानी, अभी तू देखने-दिखाने से
यो काँपती है और जब हजार-हजार राजकुमार.....

अम्बपाली—फिर वही शैतानी ? (भीते चढ़ाकर अरुण से) अरुण, चलते हो ?
चलो।

अरुणध्वज—चलूँ ? कहाँ ? संसार में कोई ऐसी जगह बता दे, जहाँ आँखें न हों।

अम्बपाली—लेकिन आँख-आँख में फर्क है।

मधूलिका—और, मैंने उस दिन कहा था, सपने-सपने में फर्क है और फर्क है
रूप-रूप में, तब तू नहीं मानती थी। भला, मुझे कोई क्यों नहीं देखता, घूरता, या तेरे
शब्दों में, निगलता !

अम्बपाली—(भुंभलाकर) मैं क्या जानूँ ?

मधूलिका—जानेगी, जानेगी । और जब जान जायगी, मुझसे भर मुँह बाते भी नहीं करेगी ।

अम्बपाली—(अरुण से खाई के शब्दों में) तुम मुझे ले चलते हो या नहीं, अरुण !

अरुणध्वज—अच्छा चल, सोमरस की दुकान पर (हाथ में बताते हुए) थोड़ा पी ले, थकावट दूर हो जायगी ।

अम्बपाली—(चौककर) सोमरस ! मौसी कहती थी, लड़कियों को सोमरस नहीं पीना चाहिए ।

अरुणध्वज—हर मोसी मना करती है और हर लड़की पीती है—यही होता आया है उस युग से, जब दुनिया में लड़कियाँ पैदा हुई और देवताओं ने सोमरस भेजा ।

अम्बपाली—देवताओं ने भेजा ?

अरुणध्वज—हाँ, हाँ, देवताओं ने भेजा । गुरो द्वारा सुर-लोक से भेजी गई होने के कारण ही तो यह अलौकिक पेय गुरा कहलाती है । शेषनाग को रस्ती बना, मंदराचल की भयानी से, क्षीर-सागर भथकर देवताओं ने इसे निकाला । सुधा नाम से उसे पीकर आप अमर हो गये और गुरा नाम से हमारे पास, इस मर्त्यभुवन में भेजा । हमने उसे सोमरस का सुन्दर नाम दिया ।

अम्बपाली—इसे ही पीकर देवता अमर हुए ?

अरुणध्वज—हाँ, रे, इसे ही पीकर देवता अमर हुए और इमे ही पीकर हमारे ऋषियों ने ऋग्वेद की कविता की, सामवेद के गीत गाये और यजुर्वेद से यज्ञपूत हो अमृत-पुत्र कहलाये ।

अम्बपाली—तो पीती बना द्यो करती थी ?

मधूलिका—उस दिन वह फूल गूँथने से भी तो मना कर रही थी न ?

अम्बपाली—ठीक रे ननु, बूढ़ियों की ऐसी ही बाते होती हैं । (अरुण में) लेकिन आता है यह केना अरुण ?

अरुणध्वज—अनन्त पृथ्वी, अम्बे ! जहाँ हलक के नीचे उतरा, सारी थकावट दूर—नर-नर में ताजगी दौड़ने लगती है । थोड़ी देर में ही मानूम होता है, जैसे बाहों के नीचे से पख फूट निकले हैं और हम हवा में उड़ जा रहे हैं !

अम्बपाली—जैसे सपने में लोग उड़ा करते हैं ?

अरुणध्वज—जस, बस, वैसे ही । कुछ क्षणों में ही यह हमें स्वर्गलोक में उड़ा ले जाता है । स्वर्गलोक से—जहाँ प्रचरता है, शाश्वत जीवन है, सगीत है.....

मधूलिका—(बीच में तीव्र आवाज में) और जहाँ मुनहले रंगोवाले लाख-लाख देवकुमार हैं.....

अम्बपाली—(अपट्टी हुई) तू चुप वहीं होती ।

अरुणध्वज—(अम्बपाली का हाथ पकड़े हुए) चल-चल, जरा पी ले—

एक हाथ में अम्बपाली और दूसरे हाथ में मधूलिका की पकड़े अरुणध्वज दौगेंगे हुए सोमरस की दुकान पर जाता है—युवक-युवातियों के रंग-रूप में पीना युग जिते हैं और

अम्बपाली :

एक मंच पर बैठकर सोमरस पीते हैं—एक दूसरे को प्याले-पर-प्याले पिलाये जा रहे हैं—

उसी समय चार राजकुमारों के साथ पुष्पगंधा, वैशाली की आज तक की राजनर्तकी वहाँ पहुँचती हैं—संघ के प्रतिनिधि की हेंसियत से ये पाँचों नई राजनर्तकी के लिए सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के चुनाव करने को किशोरियों का निरीक्षण करते फिर रहे हैं—उनमें से एक राजकुमार की नजर अम्बपाली पर पड़ती है—

वह राजकुमार—(पुष्पगंधा से) भद्रे, जरा उस किशोरी को तो देखें।

पुष्पगंधा—कौन ? वह ? (अम्बपाली की ओर उंगली उठाती)

दूसरा राजकुमार—(उमी और उंगली करके) वह ? वही न ?

पहला राजकुमार—हाँ, हाँ, वही। कितनी अपूर्व सुन्दरी ! ऐसी सुन्दरी इस उत्सव-मंडली में दूसरी नहीं है। क्यों गई ? (तीसरे राजकुमार से)

तीसरा राजकुमार—इतनी जल्दी मत कीजिये, भाई ! हमें एक ऐसी सुन्दरी चुनना है, जिसके जोड़ की हमारे संघ की तरह ही, सप्ताह में न मिले। जो कीर्ति वृजिसंघ को प्राप्त है, उसके प्रमुख ही तो राजनर्तकी भी चुनी जानी चाहिए न ? जिस गौरव को देवी पुष्पगंधा ने स्थापित किया है, उसकी रक्षा क्या हम इतनी जल्दबाजी करके कर पायेंगे ?

पुष्पगंधा—कुमार, आपका कहना राही है, हमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। लेकिन, वह कोई साधारण रूपसी नहीं मालूम होती है, कुमारी !

पहला राजकुमार—प्राप ठीक कहती है, मुझे शक है, देवसभा की उर्वशी भी इतनी सुन्दरी होगी। (राजकुमारों से) जरा, इसके एक-एक अंग को देखो, भाइयो ! उफ; वह तो साँचे की डली मालूम होती है—सुन्दरता, मानो, नारी का रूप धरकर हमारे सामने साक्षात् खड़ी है !

तीसरा राजकुमार—(गौर में निरीक्षण करते) लेकिन, कुछ गँवई-सी मालूम होती है। क्यों, आप क्या समझते हैं ? (दूसरे से पूछता है)

दूसरा राजकुमार—लेकिन वृजिसंघ नगर और ग्राम का कोई भेद नहीं करता। यहाँ सबकी समता है। अपने गुण से हर नागरिक राजा हो सकता है; अपने रूप से हर सुन्दरी राजनर्तकी के गौरव को प्राप्त कर सकती है। (चीये में, जो सब में व्यस्क हैं) क्यों, आप नहीं कुछ बोल रहे ?

चौथा राजकुमार—इसमें सन्देह नहीं कि हमने जितनी सुन्दरियाँ देखी हैं, उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु मेरा खयाल है, अपनी उत्तराधिकारी पसंद करने की सबसे ज्यादा जिम्मेवारी देवी पुष्पगंधा पर है। इसलिए, हम लोग इस पर ज्यादा विवाद न कर अन्तिम निर्णय इन्हीं पर छोड़ दें।

पुष्पगंधा—यह आपकी कृपा है, लेकिन, इससे हममें से किसी की जिम्मेवारी कम नहीं होती। हा, अच्छी बात हो, हम थोड़ा और घूमकर देख लें।

उन पाँचों का दल आगे बढ़ता है—उधर सोमरस पीकर मस्त बनी अम्बपाली अरुणध्वज और मधूलिका के साथ निकलती है—वह खूब हँस रही है—गहले की शरमिली लडकी नहीं है—प्रगल्भतापूर्वक हँसती जा रही है—

अरुणध्वज—तुम्हें क्या हो गया है अम्बे ! कहीं इतना भी हँसा जाता है ?

अम्बपाली—(उसकी आवाज लटपटा रही है, बीच-बीच में रुक जाती है) कहीं इतना भी.....हँसा जाता है ! ह-ह-ह-ह ! क्यों मधु, कहीं—इतना भी—हँसा—जाता है ! हा-हा-हा-हा ! ! !

मधूलिका—(डॉटती-सी) यह क्या अम्बे ?

अम्बपाली—ह-ह-ह-ह ! ..ही-ही-ही-ही ! ! यह क्या अम्बे ?? यह क्या ? .. अरे, यह क्या रे मधु ! ..मधु ! ! ..हा-हा-हा-हा ! ..हो-हो-हो-हो !

मधूलिका—(नाराजी और हुकूमत के स्वर में) तू चुप नहीं होती !

अम्बपाली—(घूरकर देखती) चुप नहीं होती ! चुप नहीं ..हा-हा-हा-हा .. हो ..हो ..हो ..हो ..मधु ! मधु ! ! ..अरी, मैं उड़ी जा रही हूँ, रे मधु ..मधु, पकड़ रे ! रे ..ये मेरे पंख .. (हाथों का हवा में डेढ़ों-सा फटकारने लगती है)

मधूलिका—(उसके हाथों को पकड़ लेती है, अरुण में नाराजी में कहती है) अरुण, तुमने यह अचछा नहीं किया

अरुणध्वज—तू घबरा नहीं, मधु, मैं इसे तुरंत अचछा कर देता हूँ । नशा थोड़ी हरारत खोजता है । (अम्बपाली से) नाचेंगी नहीं रे !

अम्बपाली—नाचेंगी नहीं रे ..मैं नाच रही हूँ । मैं नाच रही हूँ ..रे .. मधु, ..छोड़ रे मधु .. (भटके-में हाथ छुड़ा लेती है और गति से हाथ-पैर चलाने लगती है) मैं नाच रही रे ..मधु ..नाच रे ! ..अरुण, नाच रे (वह दौड़कर अरुण का हाथ पकड़ लेती है) नाच रे ..नाच ..

अरुण उसके हाथों में हाथ दिये उसे रगभूमि में ले जाता है—मधूलिका भी पीछे-पीछे जाती है—अनेक युवक-युवतियों का नृत्य हो रहा है—अम्बपाली और अरुण भी नाचने लगते हैं—अरुण थक जाता है, लेकिन अम्बपाली अकेली नाचती ही रह जाती है—लोगों का ध्यान धीरे-धीरे उसके अपूर्व नृत्य की ओर जाता है—सब अपना-अपना नृत्य बद कर उसी का नृत्य देखने लगते हैं—चारों ओर से हर्षध्वनि और पुष्पवर्षा हो रही है—

पुष्पगंधा भी अपनी मंडली के साथ वहाँ पहुँच जाती है—वह और चारों राजकुमार उसका नृत्य देख मुग्ध हो जाते हैं—राजकुमारों का स्वीकृति-सूचक स्वर देख पुष्पगंधा आगे बढ़ती और उसके गले में राजनर्तकी की जयमाल डाल देती है—चारों राजकुमार चिल्ला उठते हैं—‘राजनर्तकी की जय’ ! ‘राजनर्तकी की जय’ ! ! उनकी जय की ध्वनि-प्रतिध्वनि उपस्थित जनता की ओर से होती है ; इस जयकार से चकित हो, मानों कुछ होश में आ, अम्बपाली मधूलिका के पास दौड़ जाती है, जो वहाँ खड़ी एकटक उसे देख रही थी—

अम्बपाली—मधु, मधु .. राजनर्तकी .. राजनर्तकी !

अम्बपाली :

पुष्पगंधा—(उसके निकट पहुँचकर) हाँ, राजनर्तकी ! कल तक की राजनर्तकी में ; आज से राजनर्तकी तुम ।

अम्बपाली—राजनर्तकी ! .. में (आश्चर्य में आँखें विस्फारित करती) राजनर्तकी ? .. मैं राजनर्तकी ? .. मैं ..

पुष्पगंधा—हाँ, हाँ, तुम राजनर्तकी, तुम ।

अम्बपाली—(अचानक विक्षिप्त-सी होकर) मधु, मैं राजनर्तकी .. अरुण, मैं राजनर्तकी ! .. राजनर्तकी .. ह-ह-ह-ह .. मैं राजनर्तकी .. हा-हा-हा-हा .. मैं राजनर्तकी .. हो-हो-हो-हो (जोरो से अट्टहास करने लगती है)

मधूलिका—(व्याकुल होकर) अम्बे, क्या बक रही है, अम्बे ?

अम्बपाली—बक—रही ? .. मैं—बक—रही ? .. (फिर उत्तेजित होकर) नहीं, नहीं, मधु, मैं राजनर्तकी .. मैं राजनर्तकी रे .. हा-हा-हा-हा .. ही-ही-ही-ही .. मैं राजनर्तकी मधु ; मधु .. मैं राजनर्तकी .. हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट .. हो-हो-हो-हो .. मेरे चरणों पर रे, मेरे चरणों पर .. (मधूलिका की आँखों को देखकर) मधु, तू धूर क्यों रही है रे .. मैं राजनर्तकी ..

अरुणध्वज—तू होश में नहीं है अम्बे ! ओहो, मधु, मैंने क्या किया ? (वह विह्वल-सा दिखाई देता है)

पुष्पगंधा—कुछ बुरा नहीं किया आर्य ! तुम सौभाग्यशाली हो, तुमने संघ को राजनर्तकी दी । तुम कौन हो, कहाँ के हो ? कौन वह सौभाग्यशाली वंश है ? कौन वह सौभाग्यशाली ग्राम है ?

अरुणध्वज—(विह्वलता में ही) मधु, मधु, यह क्या हो रहा है ? ओहो, अम्बे, अम्बपाली, यह क्या ? (थोड़ा शान्त हो पुष्पगंधा से) भद्रे, हम आनन्दग्राम से आये .. ओहो, यह क्या ?

अम्बपाली—(प्रमत्त बनी बके जा रही है) मैं राजनर्तकी .. अरुण .. अरुण .. मैं राजनर्तकी ! .. ह-ह-ह-ह .. मधु .. तू हँसती क्यों नहीं रे ? .. मैं राजनर्तकी .. हजार-हजार .. हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट .. मुकुट .. मुकुट .. हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट मेरे चरणों पर लोटते रे .. चरणों पर .. हा-हा-हा-हा .. मेरे चरणों पर .. हो-हो-हो-हो .. तू हँसती क्यों नहीं है, मधु ? .. तुम हँसते क्यों नहीं हो अरुण ? .. हँसो .. हँसो .. हँसो .. हा-हा-हा-हा .. हो-हो .. हो-हो—

अरुण के चेहरे का रंग उड़ जाता है—वह काँप उठता है फिर मूर्ति-सा खड़ा देखता रहता है—मधूलिका कभी अम्बपाली और कभी अरुण का चेहरा देखती किकर्तव्य-विमूढ़ बन रही है—इधर लोग पुष्पवर्षा और आनन्द-ध्वनि किये जा रहे हैं—उसी समय एक रथ आकर नजदीक में खड़ा होता है—पुष्पगंधा अम्बपाली का हाथ पकड़कर रथ पर चढ़ा लेती है—खिल-खिल हँसती अम्बपाली अरुण और मधूलिका की ओर मुखातिब हो बोलती है—

अम्बपाली—मधु... में राजनर्तकी... अरुण, में राजनर्तकी... राजनर्तकी...
राजनर्तकी... हा-हा-हा... हजार-हजार राज...

‘नई राजनर्तकी की जय’, ‘अम्बपाली की जय’ पुष्पगंधा कहती है—सब उसके जयनाद में साथ देते हैं—इसी तुमुल जयनाद में रथ चल पड़ता है—अरुणध्वज पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा है—मधूलिका थोड़ी दूर ‘अम्बे ! अम्बे !’ चिल्लाती दौड़ती है—फिर गिर पड़ती है—

४

वैशाली का राजकीय वसंतोद्यान—आम, लीची, महुए के पेड़ क्रमशः पक्षियों में लगे—आम की पीली, लीची की हरी और महुए की अर्द्धविकसित श्वेत मजरियों की सुगंध से प्रकृति मह-मह कर रही—क्यारी-क्यारी में रंग-विरंगे फूल—बीच में एक बँगला, पुष्पो से घिरा, लताओं से लदा—

सुबह की सुनहली धूप से सब चीजे जगमग हो रही—

बँगले के कमरे के मुँह पर जो कामदार पर्दा भूल रहा है, वह हटता है—भीतर से अम्बपाली निकलती है—आँखों में खुमार—चेहरे पर नीद की छाया—चकित नेत्रों से इधर-उधर देखती है—बरामदे पर आकर पुकारती है—

अम्बपाली—कोई है !

एक परिचारिका दौड़कर आती है—उसके सामने झुककर अभिवादन करती और बोलती है—

परिचारिका—भद्रे, जो आज्ञा !

अम्बपाली—(आश्चर्यमयी मुद्रा में) आज्ञा ? में कहाँ हूँ ? उफ, यह कैसा सपना ?

परिचारिका—नहीं आर्ये, यह सपना नहीं, प्रत्यक्ष सत्य है। यह वैशाली का राजकीय वसंतोद्यान है और मैं हूँ आपकी परिचारिका।

अम्बपाली—परिचारिका ? (भिन्नकर) मुझे किसी की परिचर्या की जरूरत नहीं। क्या मैं बूढ़ी हूँ, रोगी हूँ ?

परिचारिका—(किंचित् मुस्कान से) जरूरत पड़ेगी, पड़ेगी आर्ये !

अम्बपाली—(उत्तेजना में) नहीं, नहीं ! (उससे लेती हुई) आह, मधु कहाँ, अरुण कहाँ ? (परिचारिका से) बता, बताती क्यों नहीं ?

बँगले के बरामदे के दूसरे छोर से पुष्पगंधा आती दिखाई पड़ती है—उसकी आहट सुन परिचारिका उस ओर देखती और ससम्भ्रम हट जाती है—अम्बपाली पुष्पगंधा को घूर-घूरकर देखती है—वह निकट पहुँचती है—परिचारिका अन्ततः वहाँ से हट जाती है—

पुष्पगंधा—क्यों ? तबीयत अच्छी है न ?

अम्बपाली—आप कौन हैं ?

पुष्पगंधा—भूल गई ?

अम्बपाली :

अम्बपाली—भूल गई ! (गौर से देखती है)

पुष्पगंधा—कहीं देखा नहीं ?

अम्बपाली—(सोचती हुई) कभी सपने में शायद देखा है । आप कौन है ?

पुष्पगंधा—(मुस्कुराती) मुझे लोग पुष्पगंधा कहते हैं, यह नाम कभी सुना है ?

अम्बपाली—नाम तो यह सुना है—वृजिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, वैशाली की राजनतंकी ।

पुष्पगंधा—ठीक ; कल तक मैं वृजिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी, वैशाली की राजनतंकी थी । लेकिन, आज मैं वह नहीं रही ।

अम्बपाली—आज क्यों नहीं रही ?

पुष्पगंधा—यह भी भूल गई ? रात का सपना याद कर—तू जो रात राजनतंकी चुनी गई, वैशाली की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानी गई ।

अम्बपाली—(कातरता से) भद्रे, मैं सपनों से परीशान हूँ । मेरी मधु कहाँ, मेरे अरुण कहाँ ? अरुण... (चिल्लाती है)

पुष्पगंधा—(उसकी आवाज में गम्भीरता आ जाती है) यों लोग नहीं चिल्लाते अम्बे ! तू जहाँ खड़ी है, उस स्थान की मर्यादा देख । वृजिसंघ की कुमारियाँ मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती । जिस दिन हमारी कुमारियाँ मर्यादा छोड़ देंगी, संघ की नींव हिल जायेगी । नारियाँ राष्ट्र की इमारत की नींव की ईंट होती हैं, नींव की चंद ईंटें हटा दो, बड़ी-से-बड़ी इमारत बहुरा पड़ेगी ।

अम्बपाली—मर्यादा ? मर्यादा मुझसे टूटी है क्या भद्रे ? क्षमा करे । मुझे मेरे मधु से, मेरे अरुण से मिलाइए । आह, मेरी मौसी ! मैं कहाँ से वैशाली आई ; मैं सचमुच मेले में खो गई । (उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं)

पुष्पगंधा—(जरा-सी मुस्कुराती हुई) तू खो गई, और संघ ने नतंकी पाई । कोता खोता है, तभी कोई पाता है, अम्बे !

अम्बपाली—(गिड़गिड़ाती हुई) आयें, अब सपने में न रखिये—मुझे मेरे साथियों से मिलाइए, या आनन्दग्राम भिजवाइए ।

पुष्पगंधा—आनन्दग्राम रथ गया है, तेरी मौसी आती ही होंगी । मधु और अरुण संघ के अतिथि-भवन में हैं । तू जरा प्रसाधन कर ले, इसी रूप में मिलेगी उनसे ? अब तू अपने पद-गौरव को समझ ।

अम्बपाली—पद-गौरव ?

पुष्पगंधा—यों भूलने, विभोर होने से काम नहीं चलता, अम्बे ! अब तू राजनतंकी है । कल संघ ने तुझे राजनतंकी के रूप में अभिषिक्त जो किया । जिस अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी के जल की एक बूँद पाने के लिए कोशल और मगध की महारानियाँ तरसती रहती हैं, वह सरोवर अब तेरे अंगराग से आये दिन रंगीन और सुवासित बनेगा । वृजिसंघ के जिन राजकुमारों के गर्वोन्नत सिर हिमालय के श्रृंग की तरह उन्नत और प्रवीण हैं, जिन्हें कोई पदाक्रान्त कर नहीं सकता, झुका नहीं सकता, उन्हीं सिरों के हजार-

हजार मुकुट तेरे चरणों पर अवतल होंगे, लोटेंगे । तुझे इस गौरव के अनुरूप ही अपने को ढालना होगा, अम्बे !

अम्बपाली—क्षमा कीजिये, आर्य ! मैं राजनर्तकी नहीं बनना चाहती ।

पुष्पगंधा—कोई चाह कर राजनर्तकी नहीं बन पाती, अम्बे ! हमारा यह संघ जम्बूद्वीप भर में इसीलिए प्रसिद्ध है कि यहाँ की नारी और नर अपने व्यक्तित्व को संघ पर समर्पित कर देते हैं । संघ जिसको जो जिम्मेवारी देता है, वह उसे निभाता है । संघ की आज्ञा पर हमारे सैनिक समरक्षेत्र में अपनी गर्वन हँसते-हँसते कटा डालते हैं ; हमारे नाविक अपनी पूरी जिन्दगी बजड़ों पर ही बिताकर, नागरिक जीवन के सुख-ऐश्वर्य से दूर रहकर, हमारे संघ को नाना तरह के धनरत्न से विभूषित करते हैं ; तो फिर तुम-हम उसी संघ की आज्ञा पर अपनी जिन्दगी को संघ के मनोरंजन में उत्सर्ग कर दें, तो इसमें अनौचित्य क्या है, आश्चर्य क्या है ?

अम्बपाली—क्या यह संघ की जबरदस्ती नहीं ?

पुष्पगंधा—जिस दिन हम 'जिम्मेवारी' को 'जबरदस्ती' समझने लगेंगे, उसी दिन संघ का पूरा शीराजा बिखर जायगा, अम्बपाली ! वृजिसंघ हम सबको स्वतंत्रता की सुरक्षा प्रदान करता है । वृजिसंघ स्वाधीन नर-नारियों का संघ है, उसमें जबरदस्ती कहाँ ? हाँ, उनके द्वारा दी गई सुरक्षा और स्वाधीनता की भरपाई अगर हम अपनी जिम्मेवारी अच्छी तरह निभाकर करते हैं, तो, इसमें जबरदस्ती कहाँ है, अम्बे ! याद रख, हम जिससे पाते हैं, उसे कुछ देना भी होता है ।

अम्बपाली—लेकिन, यह अजीब देन है । सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और राजनर्तकी ? उफ ! (उसाँसे लेती है)

पुष्पगंधा—सर्वश्रेष्ठ पशु ही देवताओं को बलि दिये जाते हैं, अम्बे ! मूर्ख कहेंगे, यह कैसा अविचार ? लेकिन, उन्होंने जिन्दगी का रहस्य नहीं समझा ! जिन्दगी की सार्थकता मनमाना जीना या लम्बी आयु पाना नहीं है । जिन्दगी की सार्थकता है किसी बड़े काम के लिए उत्सर्ग कर दिया जाना—फिर वह उत्सर्ग की हुई जिन्दगी एक दिन की हो या सौ बरस की, वह खाँड़े की धार पर उतरे या चंदन की चिता पर चढ़े । (कहते-कहते उसका मुँह तमतमा जाता है, उसके चुप होते ही अजीब सन्नाटा छा जाता है)

अम्बपाली—(भयभीत-सी) देवि !

पुष्पगंधा—(जैसे उसी आवाज सुनी ही न हो) और एक बात ! तूने सौन्दर्य का महत्त्व ही नहीं जाना !

अम्बपाली—मैं यह सब भ्रष्ट क्या जानूँ, देवि !

पुष्पगंधा—भ्रष्ट नहीं है, तत्त्व है तत्त्व । दुनिया में तीन चीजों की आकांक्षा सबको होती है—धन की, ज्ञान की, सौन्दर्य की । इनमें सौन्दर्य की महिमा सबसे बड़ी है । एक गरीब आदमी परिश्रम और संचयवृत्ति से धनी बन जा सकता है, एक मूर्ख अध्ययन और अभ्यास से ज्ञान प्राप्त कर सकता है । लेकिन, लाख मिर पटक कर

अम्बपाली :

भी कोई कुरूप सुन्दर नहीं बन सकता। सौन्दर्य सिर्फ विधाता के हाथों से गढ़ा जाता है—यह सोलह आने देवी देन है। यह देवी देन तुच्छ मानवीय कामनाओं की पूर्ति में न व्यय होकर उच्च आदर्श की पूर्ति में लगे, इससे बढ़कर इसका क्या सदुपयोग हो सकता है, अम्बे ?

अम्बपाली—तो आप राजनर्तकी की जिन्दगी को उच्च आदर्श की पूर्ति मानती हैं ?

पुष्पगंधा—कोई काम स्वयं ही उच्च या नीच नहीं होता अम्बे ! एक हत्या हत्यारेपन की सूचना देती है, दूसरी हत्या हत्याकारी को देवता बना डालती है। जरा सोच तो, अपनी सभी व्यक्तिगत रुचियों, इच्छाओं, आकांक्षाओं को ठुकराकर, लात मारकर अपने-आपको संघ के प्रत्येक सदस्य के मनोरंजन के लिए अर्पित कर देना—अपने व्यक्ति को समष्टि में विलीन कर देना—इससे बढ़कर आदर्श की उच्चता एक सुन्दरी नारी के लिए क्या हो सकती है ? सुन्दरी नारी—जिसका कदम-कदम उगमगाता है। वृजिसंघ की कुमारियाँ ही इतनी बड़ी साधना का साधन कर सकती हैं, अम्बे !

अम्बपाली—(खुदाई से) साधना का साधन या आत्मा का हनन ?

पुष्पगंधा—शुरू में ऐसा ही भ्रम होता है। किन्तु तब यह है कि ज्यों ही हमने अपनेको उनके लिए अर्पित कर दिया, हम उनके मनोरंजन की चीज नहीं रह जाती, बल्कि वे ही अपनेको हमारे मनोरंजन के साधन बना डालते हैं—हमें अपना सिर उनके निकट झुकाने की जरूरत नहीं होती, उन्हीं के हजार-हजार राजमुकुट हमारे चरणों की धूल चाटने लगते हैं। हम नारियों की भी एक महिमा है, यह क्यों भूल जाती है, भोली लड़की !

अम्बपाली—(दीर्घ उच्छ्वास के साथ धीमे स्वर में) आह, मेरा अरुण !

पुष्पगंधा—अरुण ! अरुण भी तो वृजिसंघ का एक सदस्य है। कौन उसे तेरे पास आने से रोक सकता है ? जा, तू जल्द प्रसाधन तो कर ले। चयनिके ! (पुकारती है)

पुकार सुनकर परिचारिका शीघ्र उपस्थित होती है—उदास, अनमनी अम्बपाली उसके साथ बंगले के भीतर जाती है—पुष्पगंधा सामने के उद्यान में घूमती है—रह-रह कर काँप उठती है—अन्ततः उसकी आँखों में आँसू भरने लगते हैं—क्यों ? किसके लिए ?

५

वेगवती नदी की पतली धारा सध्या की किरणों से रंगीन हो रही है—आनन्दग्राम की नारियाँ घड़े लिये आती और जल ले जाती हैं—उनका आना-जाना लगा है—

धारा के उतार की ओर चरवाहे अपनी गायों और दूसरे जानवरों को लाते, पानी पिलाते और गाते-बजाते गाँव की ओर चल पड़ते हैं—

कुछ बच्चे धारा के चढ़ाव की ओर, नटभूमि की शीतल बलुई जमीन पर, बालू से धरौड़े का खेल खेल रहे हैं—वे खेलते, उछलते किलकारियाँ भरते, भागदौड़ मचाते—

ऊपर, प्रसाद के घूसर आगमान पर, पूरबी क्षितिज की ओर, बादल का एक टुकड़ा दिखाई पड़ता है, ज़िगकी ओर नारियों का ध्यान बार-बार जाता है—

सुमना घड़ा लिये आती दीखती है—उदास, उतरा हुआ, अनमना है उसका चेहरा—
घड़ा धारा के किनारे रख वह बहुत देर तक बच्चों का यह घोड़ा-खेल देखती है—रह-रह
दीर्घ उच्छ्वास आपने आप निकल पड़ते हैं । —

आखिर घड़े में पानी लेकर वह जाना ही चाहती है कि मधूलिका कलसी लिये
आती दिखाई पड़ती है—वह रुक जाती है—मधूलिका उसे देख लपककर पहुँचती और
पूछती है—

मधूलिका—मौसी, सुना, तुम फिर बंशाली गई थी ।

सुमना—हाँ, गई थी । शम्भुपाली ने रथ भेजा था ।

मधूलिका—अब तो वह राजरानी हो गई, मौसी ! तकदीर इसीको कहते हैं ।

सुमना—लेकिन वह जो इसे तकदीर माने । कहती थी—मौसी, सुख-ऐश्वर्य
से भरी यह बंशाली मुझे नहीं सुहाती ; मेरा मन तो आनन्दप्राप्त की आनन्दिका या
वेगवती के तट पर ही चक्कर काटता रहता है । तुम्हें भी बुलाया है—एक दिन जरा
हो आओ न मधु ?

मधूलिका—मैं उस ओर पैर बढ़ाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती, मौसी ! सारी
बंशाली स्वन्तपुरी-सी मालूम होती है । मैं हमेशा ही सपने से भागती रही हूँ ।
(कुछ सोचकर) श्रृणु की चर्चा करती थी ?

सुमना—को थी ; कई बार की । लेकिन मैं क्या बताती भला ?

दूर से आती वशी की हृदयवेधक ध्वनि सुनाई पड़ती है—ध्वनि कानों में पड़ते ही
मधूलिका सिहर उठती है—उसके चेहरे पर कण्ठ की छाया दीढ़ जाती है—वह स्वर में
विभोर-सी हो जाती है—सुमना का ध्यान भी उस ओर जाता है—वह घड़ा रख देती और
सुनने लगती है—मधूलिका की कलसी आप ही कमर से खिसक जाती है—तब, जैसे
चौककर, वह कहती है—

मधूलिका—यह श्रृणु की ही वंशी है, मौसी !

सुमना—पहचानती हैं, मधु, पहचानती हैं । इस वंशी को अब इस आनन्दप्राप्त
में कौन नहीं पहचानता ?

मधूलिका—उसे यह क्या हो गया है, मौसी ? भोर ही, मुँह-अंधेरे, इस आनन्द-
वाटिका में पहुँच जाता है और वंशी के सुर में कण्ठ की धारा प्रवाहित करने लगता
है । और, अब इस शाम को जो शुरू किया, तो एक पहर रात बीते तक बजाता जायगा ।
कई बार कहा, इस वाटिका को भूल, इस कलमुँही वंशी को छोड़ । लेकिन कौन उसे
समझा सके ?

सुमना—तू पुरुषों के हृदय के बारे में नहीं जानती बेटी । वह अजीब चीज है ।
औरतों के दिल से वह बिल्कुल अलग चीज है । औरतों का दिल शीशा है—तुनुक,
पारदर्शी ; जरा-सी तेज आँच लगी, टुकड़े-टुकड़े हो गया । रोशनी गायब, किस्सा
खतम । लेकिन, मर्व का दिल फोलाव है । वह जल्द गर्म होता नहीं ; लेकिन जब

अम्बपाली :

एक बार गर्म हो गया, आप जलेगा, नजदीक की बीजों को जलायेगा। जब औरत के दिल पर सदमा देखो, रोओ। जब मर्द के दिल पर ठेस लगे, होशियार हो जाओ।

मधूलिका—सही कहती हो, मौसी ! मैं तो उसे देखते ही भयभीत हो जाती हूँ। उस दिन बंशाली में जब लोग अम्बा को रथ पर ले चले, मैं दौड़ी, वह खड़ा रहा। दूसरे दिन वे हमें अम्बा के पास चलने को बुलाने आये, मैं गई, वह खिसका भी नहीं। जब हम बंशाली से लौट रहे थे, मैं रोती थी, वह चुप था। लेकिन, अब वही मैं हूँ, जो अपनेको बहलाना चाहती हूँ, कभी-कभी इसमें सफल भी होती हूँ। लेकिन, अरुण ! मालूम होता है, जैसे अम्बा की याद दिन-दिन उसके दिल के गहरे-से-गहरे स्तर में पहुँचती जाती है। अम्बा को भूलने के बदले वह दिन-दिन अपनेको भूलता जाता है। मुझे डर होता है, कहीं वह, पागल (एकबारगी वह सिर से पैर तक काँप जाती है)

सुमना—तेरा डर निराधार नहीं है, मधु ! सब कुछ हो सकता है। उसपर ज्यादा ध्यान रखने की जरूरत है। मैं तो बूढ़ी हो गई, उसकी माँ भी बूढ़ी है—हम तो अपने ही को नहीं सम्हाल पातीं। यह काम तेरा है कि तू अरुण की रक्षा करे। फिर, जवानी ही जवानी की काट है, बेटी !

मालूम होता है, जैसे वशी की ध्वनि निकट से निकटतर होती जाती है—बातचीत में गर्क होने पर भी दोनों इसको महसूस करती हैं—पहले मधु उस ओर नजर करती है, फिर सुमना—दूर पर, नदी के कछार पकड़े, वशी बजाता, आता हुआ अरुणध्वज दिखाई पड़ता है—

मधूलिका—मौसी, वह, वही है न ?

सुमना—हाँ, वही तो है।

मधूलिका—आज इधर कहीं भटक पड़ा ? मालूम होता है, शायद उसे खबर हो गई कि तुम बंशाली से लौट आई हो ? (सजल नेत्र और कातर वचन में) देख तो, मौसी, इन तीन महीनों में ही वह क्या से क्या हो गया है ? कहाँ गई वह चौड़ी छाती, वे उलटे पुट्टोंवाली मस्तानी बाँहें। आह ! ये बेसँवारे बाल—ये लटपटे कटिपट ! धनुष-बाण की जगह यह कवचा की बेटी बाँसरी ! मौसी, मौसी, मेरी तो छाती फटी जाती है ! (उसकी आँखों से अश्रुधारा चलने लगती है)

सुमना—मधु ! ऐसे मौकों पर छाती को कठोर बनाना पड़ता है, बेटी ! चल, हम नदी के ऊपर चलें, कछार पर ही उससे मिलें।

दोनों, तट के ऊपर, कछार पर आती हैं—सूरज डूबने जा रहा है—वह छोटा-सा बादल का टुकड़ा आधे आसमान को ढक चुका है—अरुण सिर नीचा किये, पगडंडी पकड़े, वशी बजाता आ रहा है—उसकी दशा देख सुमना की आँखों में सावन-भादो उमड़ आते हैं—मधूलिका भरीई आवाज में पुकारती है—

मधूलिका—अरुण !

अरुणध्वज—(सिर उठाकर दोनों को घूरता है, फिर बोलता है) कौन ? मौसी ? प्रणाम, मौसी !

सुमना—अरुण, मैं वैशाली गई थी, अम्बा तेरी याद करती थी।

अरुणध्वज—(प्रदन्वाची स्वर में) याद ! करती थी ? अम्बा मुझे याद करती थी ? क्यों मौसी ?

सुमना—हाँ, हाँ, याद करती थी। बहुत याद करती थी। एक दिन जाओ न ? मधूलिका को लेते जाना।

अरुणध्वज—(करुणामय हँसी के साथ) मधूलिका को भी लेते जाना ! खूब ! चल रे मधु, चल। वैशाली चल। चल रे, तुझे भी राजनर्तकी बना आऊँ। तू भी राजनर्तकी बनना ; हजार-हजार राजकुमारों के मुकुटों को ठुकराना !! हाँ, हाँ, चल। कब चलती है, रे ?

मधूलिका—(आँचल से आँसू पोछती) मौसी !

सुमना—अरुण, यों होश मत खो !

अरुणध्वज—(गम्भीर होकर) होश ! मैं खोजूँगा ? नहीं मौसी, मैं होश नहीं खो सकता। मैं होश खोजूँगा, तो अम्बा की याद कौन करेगा ? नहीं-नहीं, मैं होश नहीं खो सकता। अच्छा, बता—अम्बा कैसी है ?

सुमना—बड़े मजे में ; तेरी बहुत याद करती थी !

अरुणध्वज—(फिर पूर्व-मा विद्रूप स्वर में) 'तेरी बहुत याद करती थी !' 'बड़े मजे में !' (वह अकस्मान् ठठाकर हँस पड़ता है) मौसी, बड़े मजे में कैसे याद की जाती है, मौसी। मेरी अच्छी मौसी, जरा मुझे बता दो। बता दो। (मधूलिका की ओर मुखातिब होते) तू जानती है, मधु ? तो क्यों नहीं बताती ? हाँ-हाँ, तुम लोग 'बड़े मजे में' याद करना जानती हो। वहाँ अम्बा 'मजे में' याद करती है, यहाँ तू..... (मधूलिका की आँखों में अश्रुप्रवाह देखकर उसकी भावभंगी तुरत बदल जाती है) अरे, यह क्या ? तू रो रही है ! रो रही है ! तो तू 'मजे में याद करना' नहीं जानती। हाँ, हाँ, यह कला सिर्फ अम्बा.....

सुमना—(बीच ही में बात काटकर) यह तू क्या हुआ जा रहा है, बेटा ?

अरुणध्वज—उस दिन माँ कह रही थी, तू क्या हुआ जा रहा है, बेटा ? आज मौसी कह रही है, तू क्या हुआ जा रहा है बेटा ? क्या मैं सचमुच कुछ हुआ जा रहा हूँ, मौसी ! नहीं, नहीं, मर्द कुछ नहीं हो सकता। सिर्फ लड़कियाँ सबकुछ हो सकती हैं ! अम्बा राजनर्तकी हुई, मधु राजनर्तकी होगी—(सिर खुजलाकर जैसे याद करता) वह..... क्या नाम है उसका, उसका.....हाँ, रेणुका ! रेणुका राजनर्तकी होगी, और वह (फिर सिर खुजलाता) मधु, जरा गाँव की सब लड़कियों के नाम बताती जा, भाई ! तुम सब एक दिन राजनर्तकी हो जाओगी !! (मधूलिका फूट-फूटकर रोने लगती है—) अरे, तू तो हिचकियाँ लेने लगी ! चुप रे चुप ! हँस रे हँस ! देखा नहीं, अम्बा उस दिन किस तरह हँस पड़ी थी—जोर-जोर से ठठा-ठठाकर, ह-ह-ह-ह...ही-ही-ही-ही...हो-हो-हो-हो ! तू भी हँस ! नहीं हँसती है ? (मधूलिका की छुड़ी पकड़कर) समझा

अम्बपाली :

रे, समझा ! तुझे सोमरस चाहिए ! चल-चल ; उस दूकान पर चल । तुझे भी थोड़ा सोमरस पिला दूँ—सोमरस, सुधा, सुरा ! फिर तू भी हँसेगी—हँसेगी, कहेगी—अरुण ! मेँ राजनर्तकी.....मेँ राजनर्तकी.....अरुण, मेँ.....

तब तक चारों ओर छाये बादल से अचानक बिजली कीध जाती है—फिर जोरों से बादल गरज पड़ता है—अरुण आसमान की ओर देखता और 'मौसी, प्रणाम' कहकर जिस रास्ते आया था, उसीसे द्रुतपद भागता है—सुमना और मधूलिका विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखती रह जाती है—



दूसरा अङ्क

१

वैशाली का शरद-उपवन—बीच में एक तालाब, जिसमें कुमद के शत-शत फूल खिले हुए—फूलों को ठेलते हुए चकवों के अनगिनत जोड़े किलोल कर रहे—उनके कलरव और पंख की फटफट से समूचा तालाब मुखरित हो रहा—तालाब के परले कछार पर फले कास की झुरमुटें सिर हिला रही—शेष तीन किनारों पर हरसिंगार के अनेक झाड़, जिनके फूल टप-टप करते थाले में झड़ रहे—

तालाब से थोड़ा हटकर राजनर्तकी का शरद-प्रासाद—बिल्कुल मुफेद, दूध का धोया-सा—उसका प्रतिबिम्ब तालाब में भी दिखाई पड़ता है—

प्रासाद की छत पर, खुले आसमान के नीचे, उजला दपादप फर्श बिछा—चारों ओर कुमुद के बंदनवार लटके—बन्दनवार के बीच-बीच चाँदी के पिंजड़े टँगे, जिनमें खंजन खिलवाड़ कर रहे—फर्श के बीच में कुछ ऊँचा मंच, जिसका कारचोबी का काम चमचम कर रहा—मंच पर सोमरस से भरी चाँदी की सुराहियाँ और चून्नी की प्यालियाँ रखी हैं—

बिल्कुल साफ आसमान पर शरद की पूर्णिमा का चन्द्रमा पूरव क्षितिज में मिर उठाकर अपनी हँसी बिखेर रहा है—असंख्य तारे चमचम कर रहे हैं—चारों ओर स्वच्छ,

अम्बपाली :

धवल, स्निग्ध चन्द्रिका छाई हुई है—पेड़ों की फुनगियों पर हल्का-हल्का सुफेद कुहासा छाया हुआ है—

छत पर परिचारिका के साथ अम्बपाली आती है—

यह पाँच वर्ष पहले की अम्बपाली नहीं रह गई है—तब वह किशोरी थी, अब युवती है—उसके अंग-अंग भर चुके हैं—जवानी छलकी पड़ती है—चेहरे पर ओज है, पैरों में गम्भीरता—सिर कहता है, आसमान मेरा, पैर कहते हैं, जमीन मेरी—

बूटे-गोटे से चकमक बना श्वेत रेशमी परिधान है उसका, जिसकी किनारी में मुक्ताओं की भातारें झलमल कर रही—उजली वारीक कचुकी के ऊपर लटकती मोती की माला की सुफेदी को कचुकी में टँके दो बड़े हीरो की दीप्ति और भी शुभ्र बना रही—शरीर के शेष नम्र भाग जैसे चाँदनी की सुफेदी में घुले जा रहे हों—

वह चाँद को एकटक निहारती है—फिर सारे आनमान का जैसे निरीक्षण कर जाती है—उसके बाद राजन के एक पिजड़े के निकट जाती और उसे हिला देती है—खजान पक्ष फड़फड़ाने लगते हैं, वह मुस्कुराती है—पिजड़े में हटकर वह फर्श के मच पर जाती और मसनद से उठँग कर बैठती है—परिचारिका ने कहती है—

अम्बपाली—चयनिके, थोड़ा सोमरस पिला ।

सुराही से ढालकर चयनिका प्याली में उम्रे सोमरस देती है—कई प्यालियाँ घट-घट पी जाती हैं—फिर कहती है—‘अभी रहने दे’ और चाँद की ओर देखती लोट जाती है—थोड़ी देर तक उसे देखते रहने के बाद चयनिका से पूछती है—

अम्बपाली—चयनिके, आदमी चाँदनी क्यों पसंद करता है, तू जानती है ?

चयनिका—शायद इसलिए कि चाँदनी बड़ी शीतल होती है भद्रे !

अम्बपाली—शीतल होने का कारण ?

चयनिका—तो भला ?

अम्बपाली—दूर पगली, कहीं आदमी शीतलता पसंद करता है ? आदमी ऊष्णता पसंद करता है, गरमी पसंद करता है । इसी गरमी के पाने के लिए वह सोमरस पीता है, इसी गरमी की तलाश में प्रिया या प्रियतम के वक्षस्थल की खोज में व्याकुल रहता है । गरमी जिन्दगी है ! और शीतलता ? शीतलता, ठंडक तो मौत है, रे ! आदमी शीतल हुआ, ठंडा पड़ा और मरा । कहीं मौत भी पसंद की जाती है ? (मुस्कुरा पड़ती है)

चयनिका—तो चाँदनी क्यों पसंद की जाती है आर्ये !

अम्बपाली—अब मुझीसे सवाल कर बैठो ? पहले तू तो बता ले ?

चयनिका—शायद इसलिए कि चाँद बहुत सुन्दर है और ‘सुन्दरे कि न सुन्दरम्’ !

अम्बपाली—खुब ! ‘सुन्दरे कि न सुन्दरम्’ ! लेकिन चाँद की सुन्दरता का भंडा उसी दिन फूट गया, जब एक नारी के सौन्दर्य पर मग्न हो, देवताओं के राजा समेत, वह जमीन पर उतरा और इनाम में अपने शरीर का यह काला धब्बा पाया । तूने अहल्या का नाम सुना है, चुन्नी ?

चयनिका—वही न, जिनकी गिनती पंचकन्याओं में होती है ?

अम्बपाली—हाँ, वही । उन्होंने अपने सौन्दर्य की महिमा से देवों को, देवराज को, जमीन पर उतरने को लाचार किया ; हम नारियों की गरिमा बढ़ा दी ; इसीलिए अभिशप्त होने पर भी पंचकन्याओं में उनकी पहली गिनती है, वह प्रातःस्मरणीया है । (हाथ जोड़कर मन-ही-मन प्रणाम करती है) चुन्नी, कुछ और तो अटकल लगा ?

चयनिका—मेरी समझ में कुछ नहीं आता, आर्ये !

अम्बपाली—नहीं आता ? तो सुन । आदमी चाँदनी इसलिए पसंद करता है कि इसमें एक कुहेलिका है, प्रहेलिका है । सत्य के सीधे-सादे वास्तविक रूप से आदमी घबराता है । हमेशा देखोगी, विज्ञान की अपेक्षा आदमी कविता को अधिक पसंद करता है ।

चयनिका—कविता तो मुझे भी बहुत पसंद आती है, भद्रे !

अम्बपाली—सभी को पसंद है । आदमी निखालिस चीज कभी नहीं पसंद करता । वह निखालिस न सत्य पसंद करता है, न असत्य ; न ज्ञान पसंद करता है, न अज्ञान । वह दोनों का सम्मिश्रण खोजता है । आदमी अंधकार नहीं पसंद करता, क्योंकि वह उससे डरता है । यों ही सूरज की रोशनी भी उसे पसंद नहीं, क्योंकि वह सब चीजों को उसके सामने नंगा-सा करके रख देती है । चाँदनी वह इसलिए पसंद करता है कि उसमें न तो अंधकारवाला डर है, न रोशनीवाला नगापन । आदमी स्वभावतः रहस्यवादी होता है, चयनिके !

चयनिका—(साश्चर्य) रहस्यवादी ?

अम्बपाली—हाँ, रहस्यवादी ! हम-तुम परिधान ही क्यों पहनते हैं ? तू जानती है ?—स्वर्ग में सभी नंगे रहते हैं । हाँ, सभी देवकुमार, देव, देवपत्नियाँ, अप्सराएँ । वे परिधान की आवश्यकता ही नहीं महसूस करते—बिल्कुल नग्न रहते हैं, एक दूसरे से घुलते-मिलते हैं । न आवरण, न बंधन ! लेकिन आदमी को अपनी वासना के नग्न प्रदर्शन में लज्जा हुई, उसने परिधान बनाये, वासना को रहस्यमय रूप दिया । एक रहस्य से हजारों रहस्यों की सृष्टि हुई । अब हालत यह है कि वह बिना रहस्य के जी नहीं सकता !

उम्मी समय दूसरी परिचारिका नीचे से आती है ; कहती है—

दूसरी परिचारिका—राजकुमार वसुबंधु चार-पाँच राजकुमारों के साथ पधारे हैं, आर्ये !

अम्बपाली—(अभिमान से ओतप्रोत ; भीड़ें चढ़ाकर) कह दे, अभी ठहरें । और सुन, जबतक सब राजकुमार न आ जायें, उन्हें नीचे ही बैठाती जाना । जा—

दूसरी परिचारिका जाती है—

अम्बपाली—सुनती है, चुन्नी ! नारी की जिन्दगी दो ही तरह की हो सकती है (पश्चिम की ओर, डूबने के पहले, लाल बल-में रहे मंगलतारा की ओर दिखाती) या तो उस मंगलतारा की तरह, जो संध्या की लाली में अकेला उगता, कुछ बेर अपनी भलक अकेला दिखलाता और फिर चुपचाप सदा के लिए अकेला डूबने जा रहा है । (पूर्व की

अम्बपाली :

और मुस्कुराते-से चाँद को दिखाती) या इस चाँद की तरह, जो हजार-हजार तारों से घिरा रहकर अपनी हास्य-ज्योत्स्ना से जगत् को हमेशा पुलकित-प्रफुल्लित किये रहता है। नारी के लिए बीच का रास्ता नहीं है, चयनिके ! (थोड़ी देर रुककर) तू इन तारों को पहचानती है, चुन्नी ?

चयनिका—जमीन से ही कहाँ फुसंत मिलती है जो ऊपर देखूँ, भद्रे !

अम्बपाली—(मुस्कुराकर) शोख लड़की ! (उसके गाल पर एक दुलार-भरे प्रेम की हल्की चपत लगाती) अच्छा देख । (आसमान के तारों की ओर उँगली से बताती हुई) यह है आकाशगंगा—इसीमें नग्न देवसुन्दरियाँ और अप्सराएँ उभ-चुभ नहाकर हमेशा अनन्तयौवना बनी रहती है ; इसीके किनारे गुरुपत्नी तारा युवा शिष्य सोम के लिए व्याकुल फिरा करती थीं और इसीमे से एक घड़ा जल लेकर वह रोहिणी पहली असाढ़ को धरती पर उड़ेल देती है, जिससे सूखे पेड़ हरे हो जाते हैं, मरी दुब जी उठती है और बीज में बेहोश सोया अंकुर अचानक जग पड़ता और जमीन फोड़कर बाहर निकल आता है ! वह है कृत्तिका (कचपचिया)—कैसी ? हीरे की कनिकाओं के चमचमाते गुच्छे-जैसी । और, वह है तुला (डडी-तराजू)—जो रात-भर इस पृथ्वी पर होनेवाले पाप-पुण्य को तोलती रहती और उसका लेखा-जोखा उस सुदूर ध्रुव को देती जाती है, जो इस चंचल संसार—जगत्पां जगत्—में एकमात्र स्थिर वस्तु है !

चयनिका—और, वह क्या है आर्ये, सप्तर्षि न ? (उँगली से बताती)

अम्बपाली—हाँ, ध्रुव को केन्द्र बना साल-भर में एक अर्धवृत्त बना लेनेवाले सप्तर्षि वही हैं । उनमें वह है वशिष्ठ ।

चयनिका—जिनकी बगल में वह अरुंधती हैं ? है न ? उस दिन अपनी एक सखी की शादी में मैं गई थी ; शादी के बाद उसे लोगों ने अरुंधती दिखाई थी । ऐसा क्यों होता है, आर्ये ?

अम्बपाली इस प्रश्न से चौक उठती है—उसे तुरत याद हो आती है, बचपन की बातें—जब वह सोचती थी, वह भी वधू बनेगी, मंडप पर भाँवरे देगी, अरुंधती देखेगी—किसके साथ ?—उसके सामने अरुण की तस्वीर खड़ी हो जाती है—वह एकटक उस काल्पनिक तस्वीर को देखती रह जाती है—उसकी साँस तेज होने लगती है—उसकी आँखें डबडबा आती है—वह काँप उठती है—भरीई आवाज में कहती है—

अम्बपाली—थोड़ा सोमरस ला, चुन्नी !

चयनिका सोमरस देती जाती है, वह प्याली पर प्याली खाली करती जाती है—लगातार उसे यों पीते देखकर चयनिका भयभीत हो जाती है—उसके हाथ काँपने लगते हैं—सोमरस की कुछ बूँदें मंच पर छलक जाती है—अम्बपाली इसे देखती है और कहती है—

अम्बपाली—अरे, तेरे हाथ क्यों काँप रहे हैं रे ! दे, दे । देती जा ; देती जा । बड़ी अच्छी चीज है यह चयनिके ! सब कुछ भुला देती है, सब कुछ । सब कुछ भुला देती

है, आनन्दलोक में पहुँचा देती है ! दे, ढाल—(दो-तीन प्याली और पीती है—फिर प्याली रखकर कहती है)—चुप्री, तू जानती है, आनन्दलोक किसे कहते हैं ?

चयनिका—मे क्या जानूँ, भद्रे !

अम्बपाली—आनन्दलोक और कुछ नहीं, वह विस्मृति का लोक है। विस्मृति का लोक—जहाँ सब कुछ भूल जाया जाय। न दुनिया की याद रहे, न दीन की ; न यह लोक याद रहे, न परलोक। आनन्द एक भावावेश है, चयनिके ! जहाँ भावावेश टूटा, अपनी याद आई, दुनिया की याद आई, फिर आनन्द का पंछी भी फुर से उड़ा। आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द, परमानन्द—जो नाम वे दो, सबका मूल सूत्र एक ही है—भावावेश, विस्मृति, बेहोशी, बेखुबी।

नीचे से फिर परिचारिका आती है और अभिवादन कर कहती है—

दूसरी परिचारिका—नीचे राजकुमारों का ठट्टा जुटा है, भद्रे ! वे कहते हैं, आज शरद-पूना है, विलम्ब क्या उचित है ?

अम्बपाली—(चयनिका से) हाँ, हाँ, आज शरद-पूना है रे। मैं यह भी भूली जा रही थी। आज ही तो कृष्ण ने लीला रचाई थी न ? बीच में कृष्ण, चारों ओर गोपियाँ। नीचे यमुना कलकल कर रही, ऊपर चाँद हँस रहा। आज अम्बपाली भी रास रचायगी ; इस पूना के चाँद के नीचे रास की यमुना बहायगी। वहाँ था एक पुरुष ; हजार नारियाँ। आज होगी एक नारी—और, हजार-हजार—हाँ, हजार-हजार राज-कुमार। (दूसरी परिचारिका से) जा—उन्हें भेज।

परिचारिका नीचे जाती है—राजकुमारों का ठट्टा आने लगता है—चयनिका सुराही से सोमरस ढालती है—अम्बपाली अपने हाथों से उन्हें सोमरस देती जाती है—उनके सोमरस पीने के बाद अम्बपाली खड़ी होती है, अँगड़ाई लेती है, एक बार चाँद को देखती है, फिर गाने और नाचने लगती है—

कह गई यह चाँदनी—
 सो रही मैं आज उन्मन
 बह रही थी पवन सनसन
 अधर गुनगुन
 चरण रुनरुन,
 स्वप्न की तस्वीर-सी उतरी परी उन्मादिनी।
 कौन थी, क्या चाँदनी ?

कह गई यह चाँदनी—
 तोड़ यह भव-बंध सारा
 तोड़ विधि की मिथुर कारा
 उड़ चली चल
 दूर नभ - तल

अम्बपाली :

स्वर्ग-गंगा के किनारे आज एक कुटिया बनाये
रास उसके धवल आँगन में मुदितमन हम रचाये

छूम-छून-नन

मधुर शिञ्जन

गगन गनगन हो उठे, डोले धरित् प्रमादिनी

—बोलती थी चाँदनी !

बीच-बीच में अम्बपाली किसी राजकुमार का हाथ पकड़कर नाचने लगती है—
वह निहाल हो उठता है, दूसरों की भवों पर बल पड़ जाते हैं—उनकी भावभंगी देख नाचती
ही नाचती वह सोमरस की प्याली पर प्याली उन्हें देने लगती है—सब मस्त होकर नाचने
लगते हैं—इस शरद में भी सबके चेहरे पर पसीने की बूंदें हैं—अम्बपाली का चेहरा तारा-
मडिन शरद-चन्द्र-सा लग रहा है—

२

वैशाली में दूसरी बार भगवान बुद्धदेव पधारे हैं और अम्बपाली की आम्नवाटिका
में ठहरे हैं—

इस खबर से ही सारी वैशाली में हलचल मच जाती है और वहाँ के नागरिक
और नागरिकाएँ अपने-अपने रथ पठाकर उस आम्नवाटिका की ओर चल पड़ते हैं—

अम्बपाली को खबर होती है, वह भी अपने सजेसजाये रथ पर चढ़कर चल पड़ती
है—उसका वह गगाजमनी रथ, जिसमें दो पुष्ट दन्त अश्व जुते—रथ के ऊपर वृज्जिमघ की
राजनर्तकी की मीनकेतन-पताका लहरा रही, जिसमें नीली जमीन पर सोने के तार में
बनी मछली की आकृति—

आम्नवाटिका के द्वार पर रथ से उतर, अम्बपाली अपनी परिवारिका चयनिका को
बुद्धदेव के पास आज्ञा लाने को भेजती है—

आम्नवाटिका के मध्य में भगवान बुद्ध शिष्यों के साथ विराजमान हैं—बीच में
एक ऊँचा आसन है, जिसपर वह बैठे हैं—सिर, भवे, दाढ़ी, गूँछ, सबके बाल मुँडे हुए—
छोटे-छोटे पीले कपड़े के टुकड़ों से सीकर बनाया गया उनका लवादा मगध के छोटे-छोटे
धनखेतों की तरह लगता है—वह बिल्कुल ध्यानमग्न हैं—उनकी बगल में उनके प्रधान
शिष्य आनन्द हैं और आसन के नीचे उनका शिष्य-समूह—सबकी वेशभूषा बुद्ध की ही
तरह की—

चयनिका को आते देख एक शिष्य बड़ता और उसके हाथ का एक पुर्जा आनन्द
को लाकर देता है—पुर्जा पढ़कर, ध्यानस्थ बुद्ध जब आँखें खोलते हैं, तब आनन्द उनसे
कहते हैं—

आनन्द—भगवान, अम्बपाली आपके दर्शन चाहती है ।

भगवान बुद्ध—(गम्भीर भाव से) अम्बपाली ?

आनन्द—हाँ, भगवान, वैशाली की राजनर्तकी ।

भगवान बुद्ध—धर्म का मार्ग सब के लिए खुला है, आनन्द । (चयनिका यह सुनती है और सिर झुकाकर चल देती है—उसके कुछ दूर निकल जाने के बाद) लेकिन एक बात है आनन्द । अम्बपाली के बारे में मैंने जो कुछ सुन रखा है, मैं चाहता हूँ, उसके आने के पहले हमारे सभी शिष्य आँखें मूंद ले ।

आनन्द—(विस्मित होकर) आँखें मूंद लें ?

भगवान बुद्ध—तुम्हें आश्चर्य हो रहा है, आनन्द ।

आनन्द—भगवान, आश्चर्य होने की बात ही है । हम भिक्षु हैं, कोई आगे, कोई जाय, हमपर उसका असर क्या हो ? क्यों हो ? भिक्षुओं के जारे में ऐसा सोचना क्या उनपर अविश्वास या उनका अपमान नहीं है ? (आनन्द का चेहरा लाल हो उठता है)

भगवान बुद्ध—यहाँ अपमान और अविश्वास की कोई बात नहीं है, आनन्द ! हम तो धर्म के मध्यम मार्ग के अनुयायी हैं । आज भी मेरे कानों में नीरंजना के तीर का वह स्वर्गिक गान नहीं भूलता—“वीणा के तार को इतना मत ऐंठो कि वह टूट जाय, न इतना ढीला रखो कि शब्द ही न निकले ।”

आनन्द—लेकिन सम्प्रज्ञ समाधि के बाद हममें इतनी साधना तो होनी ही चाहिए कि हमारा मन भक्तियों में भी मणिदीप-सा निर्धूम और एकरस बना रहे ।

भगवान बुद्ध—तुमने ठीक कहा, आनन्द । लेकिन, एक बात हमें नहीं भूलनी है । हम बच्चों की तरह दीपशिखा को चमकता खिलौना समझकर उसके पकड़ने से कहीं अपना हाथ न जला ले !

आनन्द—इसे स्पष्ट किया जाय, भगवान ।

भगवान बुद्ध—सुनो, सौन्दर्य अगर सच्चा सौन्दर्य है, तो उसमें एक जादू होता है । जादू और कुछ नहीं, सम्मोहन है । जो सतत चेतन, हमेशा चौकस मन नहीं है, उसपर सम्मोहन का असर होकर रहेगा ; और, कितने ऐसे सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने मन पर स्थायी लगाम दे रखी है ? इसलिए, ऐसे मौकों से बचकर ही रहना श्रेयस्कर है । अंधेरी रात में कभी साँप की आँखें तुमने देखी हैं ? दीपशिखा-सी जलती बेसुन्दर, मादक आँखें । उन आँखों से आँखें लड़ाना कोई बुद्धिमानी नहीं है, आनन्द ।

आनन्द—लेकिन, इस तरह तथ्य से कब तक आँखें मूंदी जा सकती है भगवान ?

भगवान बुद्ध—तो, तुम तार को ऐंठते जानेवाली बात का समर्थन कर रहे हो । इसी ऐंठन में कितनी ऐसी वीणाएँ टूट गईं, जिनकी झंकार से ससार में न जाने कितने अधिक सुख का गुञ्जार हो पाता । प्राचीन काल में हमारे कुछ ऋषियों ने यही गलती की थी । तपस्या के भोंके में पहले तो तपते-तपते शरीर गला लिया, फिर, उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप एक रम्भा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुस्कान पर सारी साधना की अंजलि चढ़ा दी । मध्यम मार्ग पकड़ो, आनन्द, मध्यम मार्ग !

आनन्द—भगवान की आज्ञा सिर-आँखों पर । भिक्षुओं, आप आँखें मूंद लें ।

अम्बपाली :

सभी भिक्षु आँखें मूंदते हैं—आनन्द भी आँखें मूंद लेते हैं—भगवान बुद्ध आनन्द को भी आँखें मूंदते देखकर कहते हैं—

भगवान बुद्ध—तुम्हें इसकी जरूरत नहीं है, आनन्द । आनन्द तो बुद्ध की छाया है, जिसका बुद्ध पर असर नहीं हो सकता, उसका आनन्द पर भी असर नहीं होगा ।

आनन्द आँखें खोल देते हैं—दोनों दूर पर आती अम्बपाली को देखते हैं—भगवान बुद्ध कहते हैं—

भगवान बुद्ध—देखते हो, आनन्द, यह रूप ?

आनन्द—सचमुच, भगवान, ऐसा रूप मैंने कहीं नहीं देखा था ।

भगवान बुद्ध—यह अलौकिक रूप है ! मुझे यह रूप देखकर, आनन्द, बुद्धत्व-प्राप्तिवाले विन के वृक्ष याद आ रहे हैं, जब मार की प्रेरणा से ऐसी ही अनेक परिधाय मेरा तपभंग करने को मेरे निकट पधारी थीं ।

आनन्द—भगवान पर उनका क्या असर होता भला ? यह मार का सरासर अविचार था ।

तब तक अम्बपाली निकट आ जाती है—आनन के नीचे आकर, मिर झुका, भगवान का अभिवादन करती है—भगवान बुद्ध हाथ उठाकर उभे आशीर्वाद देते हैं—अम्बपाली घुटनों पर झुकी हाथ जोड़कर कहती है—

अम्बपाली—भगवान, मैं कृतार्थ हो गई । सारी वैशाली में भगवान को मेरी ही आन्न-वाटिका पसंद आई ! आज मेरे सौभाग्य का क्या कहना ?

आनन्द—आर्ये, तथागत के धर्ममार्ग में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है । उनके लिए सभी प्राणी समान हैं । रहा सौभाग्य ! सो कोई किसी को देता नहीं, वह उसकी अपनी चीज होता है ।

भगवान बुद्ध सिर्फ मुस्कुराते रहते हैं—

अम्बपाली—भिक्षुवर, अम्बपाली सौभाग्य पाती ही नहीं, लेती भी है । एक सौभाग्य अनायास मिला, तो दूसरा वह स्वयं लेने आई है ।

आनन्द—(कुछ सावधान-सा होकर) आपका मतलब ?

अम्बपाली—मैं भगवान को अपने घर भोजन करने को आमंत्रित करने आई हूँ ।

आनन्द—भिक्षु के लिए भोजन के आमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती, आर्ये ! वह अनिमंत्रित ही जाता और जहाँ प्राप्त होता है, वहीं भोजन कर लेता है । यही नियम है ।

अम्बपाली—(साधिकार) नियम है, होगा । किन्तु अम्बपाली को विश्वास है, वह भगवान से जो वरदान माँगेगी, उसमें उसे 'नाहीं' नहीं मिल सकती ।

आनन्द भगवान की ओर देखते हैं—भगवान मौन रह जाते हैं—लेकिन उस मौन से स्वीकृति स्पष्ट झलक रही है—अम्बपाली का मस्तक कृतज्ञता से झुक जाता है—हाथ बढ़ाकर बुद्ध का चरण छूती है—चलने के लिए खड़ी होती हुई आनन्द से कहती है—

अम्बपाली—भिक्षुवर, अम्बपाली अपनी जिन्दगी में पहली बार, भगवान के लिए अपने हाथों रसोई बनाने जा रही है। क्या वह आशा कर सकती है, भगवान के साथ आप भी पधारेंगे ?

आनन्द—छाया शरीर को कैसे छोड़ सकती है, आयें !

इधर बगीचे के फाटक पर कोलाहल बढ़ता जाता है—अम्बपाली भगवान का अभिवादन कर चलनी है—चलते समय अम्बपाली का ध्यान भिक्षुओं की मुँदी हुई आँखों की ओर जाता है—वह आश्चर्य-चकित हो भगवान की ओर देखती है—बुद्ध मुस्कुरा रहे हैं—उसी समय फाटक की ओर से तुमुल जयनाद सुनाई पड़ता है, जो वृज्जिसघ के महामात्य के आगमन का सूचक है—अम्बपाली फिर अभिवादन कर वहाँ से चल देती है—

वैशाली का एक नागरिक आता और आनन्द के हाथों में वृज्जिसघ के महामात्य का आगमन के लिए आज्ञा चाहनेवाला पुर्जा रख देता है—भगवान बुद्ध का रुख देख स्वयं आनन्द उनकी अगवानी के लिए जाते हैं—

महामात्य चेतक के नेतृत्व में वैशाली के नागरिकों और नागरिकाओं का भण्ड आ रहा है—उन्हें देखकर भगवान बुद्ध भिक्षुओं को सम्बोधित करते हैं—

भगवान बुद्ध—भिक्षुओ, आपमें से जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं की परिषद नहीं देखी है, वे वृज्जियों की इस परिषद को ध्यान से देखे, उनका निरीक्षण करे और इसीसे देवताओं की परिषद का अनुमान करे !

उन्हे निकट आया देख भगवान बुद्ध उनके सम्मान में अपने आसन से खड़े हो जाते हैं—महामात्य चेतक और सभी नागरिक तथा नागरिकाएँ भगवान बुद्ध का अभिवादन करते हैं—फिर आनन्द सबको सम्मान के साथ यथायोग्य आसन पर बिठलाते हैं—महामात्य भगवान बुद्ध से कहते हैं—

महामात्य चेतक—भगवान, आपके शुभागमन से हमारा वृज्जिसंघ कृतकृत्य हुआ, वैशाली पवित्र हुई। भगवान ने इस बार अनिमंत्रित ही पधारकर हमारे सौभाग्य को कितना बढ़ा दिया है !

भगवान बुद्ध—पहली बार मैं आपके निमंत्रण पर आया था। लेकिन एक बार यहाँ आने पर ही वैशाली मेरी अपनी नगरी हो चुकी ; फिर, निमंत्रण की क्या जरूरत रही महामात्य ? हाँ, इस बार मैं ही आपके नागरिकों को निमंत्रण देने आया हूँ !

म० चेतक—भगवान का आमंत्रण ! हमे लज्जित न करें भगवान। हम आपके आमंत्रण के नहीं, आज्ञा के पात्र हैं ! आपकी जो आज्ञा होगी, हम उसे सिर-आँखों पर लेंगे, भगवान !

भगवान बुद्ध—(मुस्कुराते हुए) नहीं-नहीं, आमंत्रण ही। मैं आप लोगों को विजय का आमंत्रण देते आया हूँ।

म० चेतक—(आश्चर्य से) आमंत्रण और विजय का ? भगवान, हमारा संघ न किसी की विजय बर्दाश्त कर सकता है और न किसी की स्वतंत्रता पर हाथ उठाता है।

अम्बपाली :

विजय तो तुच्छ राजतंत्र वालों की धृष्टित आकांक्षा है। भगवान हमारी जाँच न करें ; हमें धर्म का मार्ग बताये।

भगवान बुद्ध—(गम्भीर होकर) जिस धर्म में विजय की आकांक्षा न हो, उसे धर्म मत समझो, वृज्जियो ! धर्म के मानी हो है—अपने पर विजय प्राप्त करना, फिर संसार पर विजय प्राप्त करना।

म० चेतक—अपने पर विजय तो समझा, किन्तु संसार पर—?

भगवान बुद्ध—हाँ, संसार पर। वह विजय क्या हुई, जो संसार पर न छाई ? छोटे मन और संकुचित आकांक्षा को छोड़ो। अपना उद्देश्य महान करो, अपनी दृष्टि ऊँची करो। फिर विजय-अभियान को निकलो—सारा संसार तुम्हारे पैरों पर आप आ भुकेगा !

म० चेतक—यह विजय-अभियान हमारी समझ में नहीं आता, भगवान।

भ० बुद्ध—समझ में नहीं आता ? (कुछ देर ध्यानस्थ होकर) अभी शायद वक्त नहीं आया है, महामात्य। अभी तो विजय के मानी हैं हत्या, हिंसा, रक्तस्नान, अग्निकांड, क्रंदन, आतंताव। यह विजय है, या विनाश ? मैं जिस विजय की कल्पना करता हूँ और जिसके अभियान के लिए सबको आमंत्रित कर रहा हूँ, वही यथार्थ विजय होगी, वृज्जियो ! इस विजय-अभियान के सैनिकों के हाथों में फौलाद की तलवार या गेड़े की खाल की ढाल के बदले एक हाथ में तालपत्र पर लिखी कुछ पोथिया होंगी और दूसरे में भिक्षा-पात्र होगा। उनके शरीर पर जिरह-बख्तर न होकर (अपने लबादे की ओर इशारा करते) टुकड़े-टुकड़े चीथड़ों से बने, मिट्टी के रंग में रंगे, पीले वस्त्र होंगे और उनके मुँह से दानवी जयनाद नहीं, विश्वकल्याणकारी श्रुतिमधुर पूतमंत्र निकलकर दिग्दिगन्त को मुखरित करेंगे। मैं कल्पना की आँखों से देख रहा हूँ, हमारे ये सैनिक हिमांचल के दुर्गम शिखरों को रौंदते, समुद्र की उत्ताल तरंगों को कुचलते, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, चारों ओर फैल रहे हैं और ये जहाँ जाते हैं, उनका मुकाबला न होकर स्वागत हो रहा है और वे देश पर देश विजय करते जा रहे हैं ! (कहते-कहते बिल्कुल ध्यानमग्न हो जाते हैं और उनके चेहरे से आभा निकलने लगती है)

म० चेतक—(उस दीप्ति के आगे सिर झुकाते) भगवान की कल्पना सत्य होगी, क्या इसमें भी किसी को कोई सन्देह हो सकता है ? और इस विजय में हम वृज्जि भी अपना योग्य हिस्सा लेंगे—हमारी वैशाली अपना अर्घ्य अर्पित करने में पीछे नहीं रहेगी, भगवान इसपर विश्वास रखें।

भगवान बुद्ध—वृज्जिसंघ तथागत को कितना प्रिय है, क्या वह सिर्फ शब्दों में कहा जा सकता है ? तथागत के धर्मसंघ के विधान का आधार तो संघराज्य से ही लिया गया है। वृज्जि इस धर्म-विजय में योग्य हिस्सा लेंगे और वैशाली ? मैं देख रहा हूँ, जब तथागत के धर्ममार्ग पर कोई विवाद उठ खड़ा होगा, उसके निबटारे का सौभाग्य वैशाली को ही प्राप्त होगा ; और जब युगों के थपेड़ों ने इस महान नगरी के धुरें उड़ा दिये होंगे, तब भी इसकी मिट्टी के दर्शन के लिए जम्बूद्वीप के कोने-कोने से लोग आवेंगे !

वैशाली की इस महिमा को भगवान बुद्ध के मुँह से सुनकर सभी वृज्जि पुलकित हो जाते हैं—गद्गद् कंठ से महामात्य चेतक कहते हैं—

म० चेतक—भगवान का आशीर्वाद हमारा सौभाग्य है। हम वृज्जि भगवान के चिर-अनुगृहीत हैं। हम इस आशीर्वाद के योग्य पात्र सिद्ध हों, यही हमारी आकांक्षा है। (अभिवादन करते हैं) खैर, अब एक निवेदन है।

भगवान बुद्ध—बोलिये, महामात्य।

म० चेतक—मैं संघ की ओर से भगवान को अतिथि-आवास में चलने और संघ का आतिथ्य स्वीकार करने का निमंत्रण दे रहा हूँ।

भगवान बुद्ध—संघ का निमंत्रण तो हमेशा ही स्वीकृत है। किन्तु, क्या संघ अपने एक नागरिका के आमंत्रण का अपमान होने देगा ?

म० चेतक—नागरिका ? आमंत्रण ?

भगवान बुद्ध—अभी-अभी आर्या अम्बपाली आई थीं और वह निमंत्रण की स्वीकृति भी ले चुकीं।

म० चेतक—वह निमंत्रण ही देने आई थीं ?

इसी समय पीछे आकर बैठे नागरिकों में से एक बोल उठता है—

एक नागरिक—तभी वह हमलोगों के रथ से अपने रथ की धुरी लड़ाती, बेतहाशा उड़ी जा रही थी ! (सब उमकी ओर देखते हैं) मैंने पूछा, इतनी खुश क्यों हो आर्ये ? तब वह मुस्कराकर बोली—भगवान मेरे यहाँ जेवनार को जो आ रहे हैं ! एक लक्ष मुद्रा लेकर यह सौभाग्य मुझे देने का मैंने निवेदन किया। किन्तु, उसने नहीं कर दी !

म० चेतक—एक लक्ष मुद्रा !

नागरिक—हाँ, महामात्य ! वह हर्षोन्माद में कह बंठी—वैशाली की समस्त सम्पदा की कीमत पर भी यह सौभाग्य मैं नहीं दे सकती ! वह तो फूली नहीं समा रही थी।

म० चेतक—(जरा मुस्कराहट में) ओहो, अम्बा ने हमें हरा दिया !

भगवान बुद्ध—अम्बपाली साधारण नारी नहीं हैं, महामात्य। वैशाली की कीर्ति में अम्बा की कीर्ति वार चाँद लगा देगी, ऐसा मुझे स्पष्ट भास रहा है।

सभी नागरिक भगवान के मुँह से अम्बपाली की यह प्रशस्ति सुनकर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं—एक दूसरे का मुँह देखने लगते हैं—महामात्य चेतक भगवान बुद्ध का अभिवादन करके सभी नागरिकों के साथ प्रस्थान करते हैं—

३

अम्बपाली के विलास-भवन का शृङ्गारकक्ष—दीवारों पर तरह-तरह की रंगीन चित्रावली—ऊपर नीचे रंग का चँदोवा टँगा, जिनमें जहाँ-तहाँ रत्नों के गुच्छे लटक रहे—

अम्बपाली :

मानो शरद-आकाश में प्रदीप्त तारे ! नीचे जो हरे रंग की कालीन बिछी है, उसमें काड़े हुए लाल कमल के फूल स्वच्छ जलवाले सरोवर में खिले कमल-पुष्प से दीख पड़ते हैं—

कमरे की दीवार के बीच में उसी से सटा एक बड़े स्वर्ण-दर्पण के सामने एक छोटा गद्दीदार मंच है—मंच के दोनों ओर शृङ्गार-प्रसाधन के अनेक सामान सोने-चाँदी और हाथी-दाँत के छोटे-छोटे सद्कचों में रखे हैं—

मंच पर बैठी अम्बपाली दर्पण में अपनेको देख रही है—तुरत स्नान करके वह आई है—बाल खुले हैं, जिनपर पानी की कुछ बूंदें चमक रही हैं—धानी रंग का परिधान है उसका—कंचुकी अभी पूरी कसी नहीं है—दर्पण में वह अपने इस रूप-यौवन को एकटक देख रही—

थोड़ी देर दर्पण में देखने के बाद वह उठती और कमरे में टहलने लगती है—तस्वीरो को देखती, कभी सिंहर उठती, कभी बुदबदाती, फिर मंच पर आ बैठती है—दर्पण में उसकी रूप-आभा चमक पड़ती है—

उसकी परिचारिका चयनिका कमरे में आती है—उसकी आहट सुन वह उसकी ओर मुड़ती और पूछती है—

अम्बपाली—क्या है चुन्नी ?

चयनिका—आपने अभी तक प्रसाधन नहीं किया ?

अम्बपाली—न किया, न करूँगी ।

चयनिका—हाँ, भगवान बुद्ध के जाने से हम सबका चित्त आज खिन्न है ।

अम्बपाली—तेरा चित्त भी ?

चयनिका—भला !

अम्बपाली—क्यों खिन्न है, रे ?

चयनिका—क्यों न खिन्न हो, आर्यो ? इन दिनों कैंसी धूमधाम रही यहाँ !

अम्बपाली—ठीक, हम सब धूमधाम चाहते हैं—हाँ, धूमधाम ! चाहे वह धूमधाम खेल-तमाशे का हो, नृत्य-गीत का हो, या भजन-प्रवचन का ।

चयनिका—यह क्या कह रही है आर्यो ? कहाँ भगवान बुद्ध का दिव्य प्रवचन, कहाँ तुच्छ खेल-तमाशे, नृत्य-गीत ! !

अम्बपाली—तुम्हें भगवान के प्रवचन अच्छे लगे ?

चयनिका—तो भला !

अम्बपाली—तब तू बूढ़ी हो चली !

चयनिका—(चौककर) मैं बूढ़ी ?

अम्बपाली—हाँ, हाँ, बूढ़ी । सबसे दयनीय दृश्य वह होता है चयनिके, जब बुढ़ापा जवानी के शरीर में घुस जाता है । ऊपर जवानी के अंग, भीतर बुढ़ापे का खून—मानों, लाल सेब के नीचे सड़ी हुई गुद्दी !

चयनिका—खी-खी, यह क्या कह रही है भब्रे ? मैं बूढ़ी नहीं हूँ ।

अम्बपाली—चुश्री, जब मन मे शृङ्गार की जगह विराग ले ले, खेल-तमाशे के बदले भजन-ध्यान अच्छा लगे, भीड़ से घबराकर जब आदमी एकान्त खोजे, संघर्ष पर जब शान्ति हावी हो जाय, तब समझ लेना चाहिए, बुढ़ापा आ गया। रंग-विरंगे पट की जगह जब सादा श्वेत वस्त्र भाये, तब जान लो, आदमी ने कफन की ओर पैर बढ़ा दिये।

चयनिका—कफन की ओर ? मे अभी मरना नहीं चाहती, आर्यो !

अम्बपाली—मरना नहीं चाहती है, तो जीना सीख। जीना भी एक कला है, चयनिके ! कुछ लोग जिन्दा भी मरे हुए हैं, कुछ मरकर भी जिन्दा रहेंगे।

चयनिका—कुछ मरकर भी जिन्दा रहेंगे, जैसे भगवान बुद्ध ! क्यों भद्रे ?

अम्बपाली—और अम्बपाली भी !

चयनिका—(आश्चर्य से आँखें फाड़ती अम्बपाली की ओर देखती है)

अम्बपाली—(हँसती हुई) हाँ, हाँ, अम्बपाली भी। और, दो अमरों में जब युद्ध होता है, वह कैसा भयानक दृश्य होता है, तूने देखा न रे ?

चयनिका—(घबराई हुई) युद्ध ?

अम्बपाली—हाँ, जब अम्बपाली और भगवान बुद्ध मे युद्ध हुआ।

चयनिका—आपमें और भगवान मे युद्ध ?

अम्बपाली—तू कैसी अंधी है रे, कुछ देखा ही नहीं ? कई दिनों तक यह युद्ध चलता रहा है, कई दिनों तक दोनों ओर से अस्त्र चलते रहे हैं।

चयनिका—आप यह क्या कह रही हैं भद्रे ? भगवान बुद्ध और अस्त्र ?

अम्बपाली—अगर भगवान बुद्ध के पास अस्त्र नहीं है, तो वे विजयी कैसे होते हैं ? कैसे भरतखंड मे उनका विग्विजय का डंका बजता जा रहा है ? और क्या बिना अस्त्र के ही अम्बपाली ने वृजिसंघ पर विजय प्राप्त की है ?

चयनिका—ये सब बातें मेरी समझ मे नहीं आ रही, आर्यो !

अम्बपाली—अच्छा है ; या तो आदमी में इतना ज्ञान हो कि वह सब कुछ अच्छी तरह समझ ले, नहीं तो अज्ञान रहने मे ही कल्याण है। ज्ञान-अज्ञान के बीच की चीज बड़ी खतरनाक होती है, चुश्री !

चयनिका—अच्छा, तो इस युद्ध मे हुआ क्या ?

अम्बपाली—हुआ यही कि न भगवान मुझे पराजित कर सके न मे उन्हें पराजित कर सकी !

चयनिका—तो आप भगवान को पराजित करना चाहती थीं ?

अम्बपाली—जरूर। हर आदमी जिसमे कुछ कस-बल होता है, दूसरे को पराजित करना चाहता है। जिसमे जय की भावना न हो, समझ, उसमे कुछ है ही नहीं।

चयनिका—देवि, आप बिचित्र नारी हैं ! (वह काँप उठती है)

अम्बपाली—भगवान ने भी यही कहा था।

चयनिका—भगवान ने ?

अम्बपाली :

अम्बपाली—तूने अम्बपाली को क्या समझा है रे ! जिसके सामने, रुबुरु देखने से उन्होंने अपने शिष्यों को मना किया, उन्हें आँखें मूँदने को लाचार किया, क्या वह अम्बपाली साधारण नारी है ? महान ही महान की महत्ता समझता है—अम्बपाली को भगवान ने ही पहचाना ! (वह आत्मगौरव में फूल-सी उठनी है)

चयनिका—मे इन बातों को क्या समझूँ ? खैर, देर हो रही है, आप प्रसाधन कर ले ।

अम्बपाली—प्रसाधन नहीं करूँगी, यह तुझे पहले ही कह दिया है न ।

चयनिका—तो प्रसाधन क्यों नहीं करेगी ?

अम्बपाली—क्योंकि इन प्रसाधनों की व्यर्थता तो कम से कम मालूम ही हो गई । जो अस्त्र विजय न बिलाये, वह भाड़ में जाय । चयनिके, इन कुछ दिनों में प्रसाधन का एक भी साधन मने नहीं छोड़ा, लेकिन, उफ (उसाँसे लेती है)

चयनिका—भद्रे !

अम्बपाली—(अचानक उसकी आवाज भारी जाती है, चेहरे पर विषाद की रेखाएँ खिच आती हैं) चयनिके, आह, तू मेरी अन्तर्व्यथा का अनुभव कर पाती ? अम्बपाली ने सोच रखा था, उसके अस्त्र अमोघ हैं, वह सबपर विजय प्राप्त कर सकती है । उसने अपने को दीपशिखा समझा था, जिसपर हर पुरुष को पतन बनकर गिरना ही पड़ेगा । लेकिन, यह क्या हुआ ? जब-जब वह उनके नजदीक गई, उसने पाया, उनके ज्योतिर्मंडल के भीतर पहुँचते ही मानों उसकी शिखा लुप्त हो गई, वह ठंडी पड़ गई, देखते-देखते बरफ बन गई । फिर, उस ज्योति की गरमी से, उसने सहस्र किया, बरफ बनी वह, पिघल रही है, पानी-पानी हो रही है । चयनिके, जो कोई भी उनके नजदीक जायगा, वह उनमें अपनेको, अपने 'आपा' को खोये बिना नहीं रह सकता ।

चयनिका—आप सच कह रही हैं, आर्ये !

अम्बपाली—लेकिन अम्बपाली इतने सस्ते नहीं हार मान सकती थी । ज्योंही वह गरमी का असर होते देखती, वहाँ से भाग आती ।

चयनिका—तो पराजय नहीं, पलायन तो हुआ ।

अम्बपाली—हाँ, पलायन हुआ । अम्बपाली को इसके लिए लज्जा भी है । लेकिन यह पलायन उसने पराजय के प्रतीकार के लिए स्वीकार किया है । विजय को ध्यान में रखकर जो मोके पर पीछे हट जाते हैं, उनका पलायन पलायन नहीं है चयनिके । अम्बपाली तबतक चैन नहीं लेगी, जबतक वह भगवान बुद्ध पर विजय नहीं प्राप्त कर लेती ।

चयनिका—भगवान बुद्ध पर विजय ? जिसे मार नहीं हरा सका ?

अम्बपाली—मार नहीं हरा सका, न हरा सकता था । आंधी, तूफान, अजगर, शेर—शेर, जब इनसे भयभीत विचलित न हो, तो अस्त्राएँ, परियाँ—नहीं-नहीं, इन अस्त्रों से मार बुद्ध को नहीं हरा सकता था । ये उतने ही व्यर्थ हैं, जितने अम्बपाली के पिछले प्रसाधन ।

चयनिका—तब ?

अम्बपाली—तब अम्बपाली को विश्वास है, वह उन अस्त्रों को खोज सकेगी, जिनसे वह भगवान बुद्ध को पराजित कर दे। मैंने भगवान से कह दिया है !

चयनिका—(आश्चर्य की अधिकता में चिल्लाती-सी) कह दिया है ?

अम्बपाली—हाँ, कह दिया है। सुनकर वह मुस्कराये, बोले—राजनर्तकी, वह दिन तथागत के लिए धन्य होगा, जब एक नारी यह समझ ले कि उसने उसपर विजय प्राप्त कर ली। (मुस्कराती है)

इसी समय भूतपूर्व राजनर्तकी पुष्पगंधा का प्रवेश होता है—वाल खुले—कंधे से घुटने के नीचे तक एक सादा लबादा लटक रहा है—बुद्ध के उपदेशों का असर उसके चेहरे पर स्पष्ट है—अम्बपाली उसे देखते ही ससम्मान खड़ी हो जाती है—

पुष्पगंधा—लेकिन इसका अर्थ तुमने समझा, अम्बे ! मैं तेरी सारी बातें सुन रही थी।

अम्बपाली—देवि, आपका यह वेश ?

पुष्पगंधा—जैसा तूने अभी कहा है, कफन की तैयारी में यह सादा वस्त्र ! खैर, भगवान की उस बाणी के मानी बता।

अम्बपाली—मानी ? मानी तो साफ है, देवि !

पुष्पगंधा—भोली लड़की, एक ओर भूङ्ग और कीट है, दूसरी ओर पतंग और दीपक। भूङ्ग दूसरे कीड़े को अपनी आवाज के सतत गुञ्जार से भूङ्ग बना लेता है। लेकिन, दीपक सिर्फ जलता रहता है और पतंग आपसे आप उसपर टूटते और अपनेको दीपशिखा का एक अंश बना लेते हैं—मैं उन पतंगों की बात नहीं कहती, जो जलने तो जाते हैं, लेकिन जलन से व्याकुल हो अधजले या मुर्दा होकर बाहर जा गिरते हैं।

अम्बपाली—(पिछले वाक्य के व्यंग्य में तडप उठनी-सी) आप इससे क्या निष्कर्ष निकालना चाहती हैं ?

पुष्पगंधा—कीट से भूङ्ग बना। भूङ्ग भी तो एक कीट है। सिर्फ रूप-परिवर्तन, शरीर-परिवर्तन ! और पतंग का ज्योतिशिखा बन जाना !—गुण का परिवर्तन, आत्मा का परिवर्तन ! अम्बपाली भी अमर है, लेकिन भूङ्ग की कोटि की—उसकी विजय ज्यादा से ज्यादा उड़ान दे सकती है, गुञ्जार दे सकती है। किन्तु भगवान बुद्ध अमर हैं, दीपशिखा की कोटि के। जो बुद्ध पर विजय प्राप्त करना चाहेगा, उसे पतंग बनकर जलना होगा, ज्योति में मिल जाना होगा, बुद्ध में मिलकर बुद्धत्व प्राप्त करना होगा—बुद्धत्व, निर्वाण। भगवान ने इसी विजय के लिए तेरा आह्वान किया है, अम्बे ! समझी ?

अम्बपाली—मैं उनका धर्म नहीं ग्रहण कर सकती, आर्य ! यह तो मेरी हार होगी। अम्बपाली हार नहीं स्वीकार कर सकती है !

पुष्पगंधा—यह तेरी उन्न का तकाजा है, अम्बे ! काश, जिव्ग की धारा इतनी

अम्बपाली :

सीधी, सरल होती । जबतक तू आनन्दग्राम में थी, आज की अपनी ज़िन्दगी की कल्पना भी की थी ? (रुक जाती है, अम्बपाली चुप है) बोल, बोलती क्यों नहीं है, रे ।

आनन्दग्राम के उच्चारण-मात्र में ही अम्बपाली की आँखों में आँसू छलछला आते हैं—

ओहो, तू तो आज भी बच्चों की तरह हँसासी हो गई । यही ज़िन्दगी है, अम्बे ! आदमी सोचता कुछ है, हो जाता कुछ और है । उस दिन तू अरुण, मधु और मौसी कहकर कितनी चिल्लाई थी ; आज वही अरुण

अम्बपाली—(अरुण का नाम सुन व्याकुल हो, पुष्पगंधा के मुँह पर हाथ ले जाती हुई) भग्रे, उसकी चर्चा न करे—आह ! (लम्बी उसाँसे लेती है)

पुष्पगंधा—हमारी पूरी ज़िन्दगी ही एक लम्बी आह है, अम्बपाली !

४

बैशाली का पार्श्वभाग—राजपथ से दूर फैला एक विस्तृत मैदान—मैदान के बीच एक मौलिश्री का सघन पेड़—पेड़ के नीचे चबूतरा बना—चबूतरे पर पेड़ के तने में पीठ टेके अरुणध्वज बशी बजा रहा है—वह बहुत दुबला हो चला है, काला पड़ गया है—उसके रूखे बेतरतीब बाल उड़ रहे हैं—

चबूतरे की दूसरी ओर मधूलिका बंठी तागे में कुछ बुन रही है—उसके सूखे, भरीये चेहरे पर आँसुओं की सूखी रेखाएँ और दाग स्पष्ट हैं—

गरमी के दिन हैं, शाम का वक्त—एक युवती और दो नागरिक उम और में पगडंडी पकड़े गुजरते हैं—बशी की आवाज में खिचकर, धीरे-धीरे, वे उम पेड़ के निकट पहुँचते हैं—अरुण इन लोगों की ओर से लापरवाह, अपने में तल्लीन, बशी बजाना जाता है—थोड़ी देर में उसकी बशी रुक जाती है—

एक नागरिक—क्यों भाई, बन्द क्यों कर दिया ? थोड़ा और बजाओ ।

अरुण उन्हें धूर-धूरकर देखता रह जाता है—

पहला नागरिक—थोड़ा और बजाओ, भाई !

दूसरा नागरिक—कैसी करुण रागिणी ? मने ऐसी बंशी आजतक नहीं सुनी थी ।

अरुणध्वज—यह आपकी चापलूसी है या दिल्लगी ?

पहला नागरिक—बैशाली के नागरिक न चाटुकार होते हैं, न अशिष्ट ।

दूसरा नागरिक—हमें अपनी कला-मर्मज्ञता पर नाज है, युवक । सचमुच तुम अपूर्व बजाते हो ।

अरुणध्वज—अपूर्व !

दूसरा नागरिक—हाँ, हाँ, अपूर्व ! !

अरुणध्वज—(मुस्कुराता) ओहो, मैं अपूर्व बजाता हूँ ! बजाऊँ ?

दोनों नागरिक—जरूर, जरूर !

अरुणध्वज—लेकिन, किसके लिए बजाऊँ ?

पहला नागरिक—इसके मानी ?

अरुणध्वज—वंशी मर्द बजाता है, औरते सुनती है । अनन्त काल से यही होता आया है । कृष्ण ने बजाई, गोपियों ने सुनी । गोपियों ने और गायों ने भी । गायें तो आप हो नहीं सकते, फिर..... (वह हँस पड़ता है ।)

दूसरा नागरिक—यह तो तुम्हारी अजीब बात है, भाई ।

अरुणध्वज—सभी सच बातें अजीब लगती हैं, क्यों श्रीमतीजी ? (युवती से वह पूछता है, वह कुछ नहीं बोलती है)

पहला नागरिक—(युवती की ओर लक्ष्य करके) इनके कहने से बजाओगे ?

अरुणध्वज—यह कह नहीं सकती ।

पहला नागरिक—क्यों ?

अरुणध्वज—(मुस्कराता हुआ) यही हमेशा से होता आया है । औरते सुनती है, कहतीं नहीं ।

दूसरा नागरिक—कहती नहीं ?

अरुणध्वज—ऊँह ! (सिर हिलाता है) यही तो स्त्रीत्व है । कहतीं नहीं, लेकिन, सुनती है । सुनती है ; और कभी वंशी की आवाज पर नाचती रही हों, अब तो सिर्फ रोती है—क्यों मधु ?

अरुण मधूलिका की ओर देखता है—वह बुने जा रही है—यह सुनकर उसकी पपनियों पर ओम की कणिकाएँ चमक उठती हैं—

पहला नागरिक—यह तुम्हारी कौन होती है ?

अरुणध्वज—(युवती की ओर देखने हुए) और, यह आपकी कौन होती है ?

युवती—मुझे इन कांटों में मत घसीटिए !

अरुणध्वज—(नागरिकों की ओर) समझा, यह नारी बोल रही है—‘मुझे कांटों में मत घसीटिए ।’ ‘मुझे कांटों में मत घसीटिए ।’ (युवती से) लेकिन श्रीमतीजी, इस मधु से पूछिए, क्यों यह मेरे पीछे-पीछे अपने-आपको कांटों में घसीट रही है ? (मधूलिका से) मधु, तू मुझे छोड़—इस श्रीमती के साथ जा । जा, भाई जा । (युवती से) आप इसे लेते जाइए । यह भी वृजिसंघ की नागरिका है ।

युवती—यह मेरा अहोभाग्य हो कि मुझे आपलोगों का आतिथ्य करने का सुअवसर मिले ।

अरुणध्वज—(नागरिकों से) फिर नारी बोलती ! आतिथ्य !.....अहोभाग्य । लेकिन, आपलोग तो सिर्फ वंशी सुनना चाहते हैं, अच्छा सुनिए—

दूसरा नागरिक—बैशाली के नागरिकों का द्वार अतिथियों के लिए हमेशा खुला है—आपको हमारा सादर निमंत्रण है ।

अरुणध्वज—तो वंशी नहीं सुनिएगा ?

दोनों नागरिक—नहीं, नहीं—ऐसी बात नहीं । सुनाइए, सुनाइए ।

अम्बपाली :

अरुण वंशी बजाने लगता है—युवती और दोनों नागरिक मुग्ध होकर वंशी सुनते जाते हैं—

वंशी की कोमल काकली को दबोचती-सी रथ की धरं-धरं आवाज सुनाई पड़ती है—सबका ध्यान सुदूर के राजपथ पर जाता है—मीनकेतन-पताका को देख एक नागरिक कहता है—“ओहो, देवी अम्बपाली का रथ है”—अम्बपाली का नाम सुनते ही अरुण चौककर उठ खड़ा होता और वंशी पटक उम और भागता है—मधूलिका उसके पीछे लगती है—युवती और दोनों नागरिक वहाँ से आश्चर्य-चकित हो चल देते हैं—

थोड़ी देर में अरुण को पकड़े मधूलिका वहाँ आती है—दोनों चबूतरे पर बैठ जाते हैं—

मधूलिका—अब वंशाली छोड़ो, घर चलो ।

अरुण कुछ नहीं बोलता—कातर दृष्टि में मधूलिका का मुँह देखता रहता है ।

मधूलिका—मैंने क्या कहा, सुना ? घर चलो, वंशाली छोड़ो ।

अरुणध्वज—(भर्राई आवाज में) ‘वंशाली छोड़ो’, ‘घर चलो’—हमारा घर कहाँ है, मधु ?

मधूलिका—(आँचल से आँसू पोछती) नहीं-नहीं, अब वंशाली छोड़ना होगा ।

अरुणध्वज—‘वंशाली छोड़ना होगा ।’ (कुछ याद करता-सा) क्यों मधु, क्या यह वंशाली है ?

मधूलिका—तो क्या यह आनन्दग्राम है ?

अरुणध्वज—(उसकी आँखें चमक उठती हैं) आनन्दग्राम ! हमारा आनन्दग्राम ! वह बेगवती का कलकल, वह आभ्रवाटिका में पंछियों का कलरव ! हाँ, हाँ, चल, रे मधु, चल । ग्राम की डाल में भूला डालेंगे, खूब भूलेगे—मैं भूलूँगा, तू भूलेगी, अम्बा भूलेगी ! (अपने ही मुँह से अचानक निकले ‘अम्बा’ शब्द से विक्षिप्त-सा होकर) अम्बा ! ..अम्बा ! अम्बा किधर गई, मधु ? उफ ! (भटपट खड़ा हो जाता और चारों ओर भौंचक देखता है)

मधूलिका—(रोती हुई) तुम होश नहीं करोगे ?

अरुणध्वज—होश ! क्या मैं होश में नहीं हूँ, मधु ? सच ? मैं होश में नहीं हूँ ?

मधूलिका—मैं अब जहर खाके रहूँगी ।

अरुणध्वज—(आँखें फाड़ता-सा) जहर खा लेगी ?

मधूलिका—(खुलाई से) हाँ, जहर खा लूँगी, मर जाऊँगी, भँभट खत्म ! मुझसे यह सब नहीं देखा जाता ।

अरुणध्वज—(कुछ संभलता-सा, कष्ट भाव से) जहर खा लेगी, मर जायगी ? तू मर जायगी, तो मेरा क्या होगा, मधु ? मुझे कौन देखेगा ? उफ ! मैं होश में नहीं रहता ! तू मत मर मधु ! तू जहर मत खा ? मेरी मधु.....

मधूलिका—दूसरा चारा क्या है, तुम कुछ सुनते ही नहीं ?

अरुणध्वज—सुनता नहीं हूँ, यह मत कह मधु ! देखा नहीं, अभी किस तरह रथ का धरं-धरं सुन लिया और सुन लिया उस नागरिक का कहना कि देवी अम्बा.....

मधूलिका—और अम्बपाली का नाम सुनते ही दौड़ पड़े पागल की तरह। उन लोगों ने क्या समझा होगा भला ?

अरुणध्वज—क्या समझा होगा रे ?

मधूलिका—समझा होगा यह कि हमलोगों का अम्बपाली से कुछ-न-कुछ सरोकार जरूर है। जरूर कोई रहस्य की बात है।

अरुणध्वज—(कानर भाव से) तो क्या अम्बपाली से हमारा कोई सरोकार नहीं है ?

मधूलिका—(दृढ़ता से) कभी था, अब नहीं है।

अरुणध्वज—(उतेजित होकर) नहीं है ? सरोकार नहीं है ! अम्बपाली से सरोकार नहीं है ! यह तू क्या कह रही है, मधु ? अम्बपाली से सरोकार नहीं—उफ, अम्बे

वह पागल-सा चिल्लाता है—मधूलिका उसके मुँह पर हाथ रख देती है—मुँह पर हाथ रखते ही वह चिल्लाना तो बंद कर देता है, लेकिन उसकी आँखों में अजन्म अश्रुपात होने लगता है—मधूलिका की आँखों में भी आँसू भरने लगते हैं—दोनों एक दूसरे का चेहरा गौर से देखते हैं—दोनों सिर झुकाकर चुप हो रहते हैं—फिर मधूलिका कहती है—

मधूलिका—यह क्या कर रहे हो, अरुण ?

अरुणध्वज—यह क्या कर रहा हूँ, मधु ! आह ! मैं क्या कर विद्या करता हूँ मधु ? मधु, यह मुझे क्या हो जाता है, रे ! ओह ! (वह विह्वल-सा हो जाता है—जैसे उसे अपने पर पश्चात्ताप हो रहा हो)

मधूलिका—प्रेम के मानी अमर्यादा नहीं है अरुण ! कृष्ण और राधा को देखो ! गोकुल और मथुरा में कितनी दूरी थी ? एक योजन से भी कम ! क्या राधा वहाँ नहीं जा सकती थी ? लेकिन, वह नहीं गई ! अपनी ओर से एक दूत भी नहीं भेजा ! क्यों ?

अरुणध्वज—क्यों ?

मधूलिका—क्योंकि वह जानती थी कि कृष्ण की हँसियत बदल गई है। वह जिस स्थान पर बैठे हैं, उस स्थान के उपयुक्त एक गोपी का प्रेम नहीं। राधा ने प्रेम नहीं छोड़ा, तो मर्यादा भी नहीं छोड़ी। रोती रही, तड़पती रही, बिसूर-बिसूरकर जवानों गंवा दी, आँसुओं की बाढ़ में जिन्दगी बहा दी ; लेकिन कृष्ण के पास एक पाती नहीं भेजी। हाँ, जब कृष्ण ने उद्भव को भेजा, तो उनका सखा जानकर, जो कुछ कहना था, उसीसे कहा। मर्यादा इसको कहते हैं—प्रेम की महिमा यह है। और तुम ? तुम तो पागल बने बैठे हो ! दौड़कर यहाँ पहुँचे और अब यहाँ ये खुराफाते !

अरुणध्वज—(सजीदा होकर) खुराफाते—हाँ, हाँ मधु, मैं खुराफाते करता रहता हूँ—उफ !

मधूलिका—तुम्हीं सोचो न, यह खुराफात नहीं तो क्या है ? यहाँ आपे ; अच्छा ! जब-तब उसकी झलक देख लिया करते हो, यह भी सही। लेकिन, यों दौड़ पड़ना, चिल्ला उठना—क्या अम्बा या तुम्हारे किसी के लिए शोभन है ? अब अम्बा राजनर्तकी है,

अम्बपाली :

उसकी एक मर्यादा है। उस मर्यादा की रक्षा करना क्या तुम्हारा कर्तव्य नहीं ? तुम्हें कोई ऐसा काम करना क्या मनासिब है, जिससे उसके पद-गौरव पर धक्का लगे। तुम्हें तो गर्व होना चाहिए कि जिसे तुमने चाहा, आज दुनिया उसपर मर रही है। जिसका सिर तुम्हारे चरणों पर अवनत था, उसके चरणों पर आज हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट लोटते हैं।

अरुणध्वज—ओहो, हजार-हजार राजकुमारों के मुकुट ! उस दिन अम्बा ने भी कहा था न—‘अरुण, हजार-हजार.....!’ (वह एकदम आँखें मूँद लेता है)

मधूलिका—फिर वही ? तुम नहीं समझोगे—मुझे जहर खाना ही पड़ेगा।

अरुणध्वज—(आँखें खोलता, आजिजी में) मधु, मधु !

मधूलिका—मधु, मधु क्या ? तुम ठीक से रहो। अपने पर, अपने होश पर काबू करो और अपनी सारी वेदना, सारी व्याकुलता को इसी वंशी की तान में घोल दो। वेदना जब संगीत बन जाय, व्यथा जब रागिनी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्ध होती है, अरुण !

अरुणध्वज—‘वेदना जब संगीत बन जाय, व्यथा जब रागिनी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्ध होती है।’ ठीक, ठीक ! मैं न अब चिल्लाऊँगा, न दौड़ूँगा, सिर्फ वंशी बजाऊँगा ! सिर्फ वंशी बजाऊँगा ! लेकिन, तब तू जहर नहीं खायगी न मधु ! (मधूलिका की आँखों में आँसू गिरते देख) तू फिर रो रही है ?

मधूलिका—हाँ, रो रही हूँ। (आँसू पोछते) मर जब गम में होता है, वंशी बजाता है ; नारी जब गम में होती है, आँसू बहाती है।

अरुणध्वज—नारी जब गम में होती है, आँसू बहाती है। मधु, क्या अम्बा भी रोती होगी ?

मधूलिका—उसमें जो नारी है, वह जरूर रोती होगी, जार जार आँसू बहाती होगी। किन्तु, वह बेचारी तो राजनर्तकी की मर्यादा में बँधी है न ? उसका दिल भले ही रोये, उसका हृदय भले ही हाहाकार करे, किन्तु उसे अपने चेहरे पर हँसी ही रखना है, अपने मुँह से फूल ही बरसाना है। हम-तुम तो अपनी पीड़ा को रो-गाकर कम कर लेते हैं, लेकिन, सोचो तो उसकी हालत—भीतर रोना, बाहर हँसना !

अरुणध्वज—भीतर रोना, बाहर हँसना ! सचमुच यह अजीब बात है मधु !

मधूलिका—अजीब ही नहीं, अलौकिक ! इसे सिर्फ अम्बा-ऐसी असाधारण नारियाँ ही निभा सकती हैं। (करुणाभरी मुस्कान के साथ) कौसी अद्भुत घटना ? एक ही गम के तीन रूप—तुम बजाओ, मैं रोज़ और अम्बा हँसे !

तीसरा अङ्क

१

राजगृह—चारों ओर पर्वतश्रेणियाँ—पर्वतश्रेणियों के हरे-भरे वृक्षों के ऊपर, जरासंध के बनाये विशाल प्रस्तर-प्राचार के धूसर ग्रस दीख रहे हैं—इस प्राचीर पर जगह-जगह बुजियाँ बनी हैं, जिन पर तीर-कमान लिए सैनिक पहरे दे रहे हैं—

पर्वत-श्रेणियों के बीच बसा राजगृह का विशाल नगर—चौड़ी मड़के, ऊँची अट्टालिकाएँ—राजपथ के दोनों ओर तरह-तरह की दुकानें राजी—खरीद-फरोख्त का बाजार गर्म—

नगर के बीच मगध का राजप्रासाद—भव्य, दिव्य, विम्बून, विशाल प्रासाद की आखिरी मजिल पर अज्ञानशत्रु का एकान्त कक्ष—जब गे वह बौद्ध हुआ है, इसी हिस्से में वह राजकाज के बाद रहता है—यहाँ से गृद्धकूट-शिखर स्पष्ट दिखाई पड़ता है, जहाँ भगवान बुद्ध राजगृह आने पर ठहरते हैं—

कक्ष के सामने की छत पर वह व्याकुल होकर टहल रहा है—लगभग चालीस साल की उम्र—अंग-अंग की मासपेशियों और पुट्टे कम हुए—चेहरे पर चेचक के दाग, जो उसके लाख चेष्टा करने पर भी भयंकरता का आभास दे ही देते हैं—खाली सिर—खुले बाल गर्दन तक लटक रहे—गर्दन से पैर तक पीले रंग का लबादा लटक रहा—

श्रम्बपाली :

बार-बार उसकी नजर गृद्धकूट की ओर जाती है—फिर गृद्धकूट से हटते ही उसकी नजर उसके हाथ में रखी, तलहथी के आकार की, हाथी-दाँत पर बनी तस्वीर पर जाती है—तस्वीर देखते ही उसकी साँस जोर से चलने लगती है—पैर तेजी से उठने लगते हैं—

उसका उपमंत्री, सुनीध, उस समय नीचे से छत पर आता है—यह अज्ञातशत्रु का उपमंत्री ही नहीं, उसका प्रिय सखा भी है—दोनों लँगोटिया यार, आपस में कोई दुराव नहीं—

सुनीध कुछ देर तक अज्ञातशत्रु की यह भावभंगिमा देखता है, फिर बोलता है—

सुनीध—यह क्या हो रहा है, सम्राट् ! एक बार गृद्धकूट को देखना, फिर तलहथी की ओर टकटकी लगाना । किसी ज्योतिषी ने क्या फिर कोई नई भाग्यरेखा बताई है ?

अज्ञातशत्रु—(मुड़कर) ओहो, सुनीध ! भले आये । नई भाग्यरेखा ही, सुनीध, किन्तु न विधाता की बनाई, न ज्योतिषी की बताई । तलहथी में नहीं, यह देखो ! (तस्वीर दिखाता है)

सुनीध—यह तो श्रम्बपाली है !

अज्ञातशत्रु—तुमने कैसे पहचाना ?

सुनीध—अगर इतनी जानकारी न रखूँ, तो सम्राट् के मंत्रित्व की जिम्मेवारी कैसे निभा सकूँगा । जिसने हमारे पुराने शत्रु लिच्छवियों और विदेहों पर जादू डाल रखा है, जिसे पाकर सारा वृज्जिसंघ अपनी वंशाली को अलका की प्रतिद्वन्द्विनी मानने लगा है, उसे मैं न पहचानूँ ?

अज्ञातशत्रु—अपूर्व सुन्दरी है यह, सुनीध ! वृज्जियों को इसपर घमंड करने का पूरा हक है ।

सुनीध—गंगा के उस पार की भूमि में ही कुछ ऐसी खूबी मालूम पड़ती है सम्राट् ! सीता, उर्मिला, अहल्या, श्रम्बपाली—एक से एक रूप-गुणवती नारियाँ वहाँ पैदा होती आई हैं ! स्वयं सम्राट् अपनी मातृश्री की याद करे—सम्राज्ञी देवी चेल्लना का वह दिव्य रूप, आलौकिक सौन्दर्य, अपूर्व तेज...

अपनी मा की इस चर्चा में ही अज्ञातशत्रु व्याकुल हो जाता है—यहाँ इसकी चर्चा की आवश्यकता नहीं कि उसने अपने पिता को कैद कर लिया था और उसकी माँ, बेटे की इस क्रूरता पर, तड़प-तड़प कर मर गई थी—

अज्ञातशत्रु—(बीच ही में रोककर) बस, बस, तुम फिर भूल कर रहे हो, सुनीध ! मैंने बार-बार मना किया, माता-पिता की याद मुझे मत दिलाओ । मेरी कोई माता नहीं, कोई पिता नहीं ! मैं आदमी नहीं, उल्का हूँ—आप से आप आसमान से गिरा हूँ—खुद जल रहा हूँ, दूसरों को जलाता हूँ, जला दूँगा ! (दीर्घ उच्छ्वास लेकर घूमने लगता है)

सुनीध—(उसके नजदीक जाकर) क्षमा कीजिए, सम्राट् !

अजातशत्रु—सुनीध, मैं तुम्हारी योग्यता का कायल हूँ, तुम्हारे ऐसे सखा पर मुझे नाज है। लेकिन याद रखो, इस गलती का दुहराना मैं नहीं बर्बाद कर सकता। समझे ?

सुनीध—सच्चाद ! (सिर झुकाता है)

अजातशत्रु—(शान्त होकर) अच्छा, तुमसे एक मर्म की बात कहनी है, सुनीध !

सुनीध—कहने की जरूरत नहीं, सच्चाद ! क्या मगधपति की मुखाकृति की रेखाएँ ही पुकार-पुकार कर उनके मर्म के अन्तर्द्वन्द्व की घोषणा नहीं कर रही ? लेकिन—

अजातशत्रु—‘लेकिन’ क्या ?

सुनीध—घृष्टता के लिए फिर क्षमा चाहते हुए, निवेदन यह है सच्चाद, कि मगधराज के लिए क्या यह शोभनीय है कि उनका दिल ऐसा कच्चा महल हो जो उनके शत्रुओं की एक सुन्दरी के रूप-जादू से घरोँवा-सा भहरा पड़े।

अजातशत्रु—(मुस्कराते हुए) घरोँवा-सा भहरा पड़े ! तुम्हें सावधान करने का अधिकार है, सुनीध ! (अचानक गम्भीर होकर) लेकिन, तुमसे छिपाना क्या है ? आज-तक मैं अपने को पहचान नहीं सका। एक अजीब उच्छृङ्खलता मेरे मन में घर किये हुई है, जो रह-रहकर यों उभड़ती है कि... (अपने दाहिने हाथ में बाये पजे को जोर में मरोड़ता है)

सुनीध—बड़ों में मन की यह चंचलता क्या वांछनीय है, सच्चाद ?

अजातशत्रु—चंचलता ? इतना छोटा-सा नाम इसे मत दो, मेरे प्रिय सखा ! जिसके वश होकर मैंने पिता से विद्रोह किया, उन्हें बन्दी बनाया, पितृहंता कहलाया, तड़प-तड़पकर माताजी मरीं, हजारों नर-नारियों की निर्मम हत्या कराई, और आज भी नहीं कह सकता कि मुझे कब, कहाँ क्या हो जायगा—उसे तुम सिर्फ चंचलता नहीं कह सकते।

सुनीध—साधारण पुरुष में जो चंचलता होती है, महान व्यक्तियों में वही उच्छृङ्खलता के रूप में प्रगट होती है। दोनों का उद्गम एक है, स्रोत एक है ; दोनों एक चीज है। जो गंगा मगध में आकर इतनी विशाल हो गई है, हिमालय की तलहटी में वह छोटी निर्भरिणी ही तो थी ?

अजातशत्रु—लेकिन मेरे मन में जो है, उसकी सही कल्पना के लिए तुम्हें ऐसा सोचना पड़ेगा कि मगध की गंगा अपनी पूरी विशालता के साथ हिमालय की तलहटी में प्रखरतम वेग से गिर रही है—विशालता और प्रखरता का वह उद्गम सम्मिश्रण ही मेरी इस उच्छृङ्खलता की समता कर सकती है, सुनीध ! काश, मेरा हृदय मगध की गंगा की तरह शान्त और समथर हो पाता !

(गूढ़कूट की ओर टकटकी लगाकर देखता, कुछ मन-ही-मन पढ़ता और सिर नवाता है)

सुनीध—ठीक, सच्चाद, ठीक ; ऐसे मौकों पर भगवान बुद्ध...

अम्बपाली :

अजातशत्रु—(बीच ही में रोककर) भगवान बुद्ध ? सुनीध, सोचा था, भगवान बुद्ध की शरण में आने पर अब इस उच्छ्वलता पर विजय प्राप्त करूँगा। चेष्टाएँ कीं और सफलता भी मिल रही थी। अपने पर बहुत-कुछ काबू कर लिया था। लेकिन, इस छोटी-सी तस्वीर ने सारा किया-कराया बंटाड़ार कर दिया !

सुनीध—इसका प्रतीकार सहज है। मन को कड़ा कीजिए। इस तस्वीर को फेंक दीजिए, तोड़ दीजिए, जला दीजिए। आपसे नहीं होता, तो लाइए इधर। (हाथ बढ़ाता है)

अजातशत्रु—(मूकुराता हुआ) कैसा सहज प्रतीकार !—फेंक दीजिए, तोड़ दीजिए, जला दीजिए ! सुनीध, इधर एक सप्ताह से इसी उद्देश्य से इस तस्वीर को निकालता हूँ। मन कड़ा करने के लिए राजवस्त्र को त्याग यह पोला लबादा ओढ़ता हूँ। लेकिन ज्योंही तस्वीर हाथ में लेता हूँ, हाथ कांप उठता है। हाथ कांपता है, जोर से मुट्ठी बाँधता हूँ। हृदय डगमगाता है, गूढ़ कूट की ओर देखता हूँ। और इन सारे प्रयत्नों के बावजूद इस आठवें दिन भी तस्वीर जहाँ की तहाँ है और न जाने मेरे पैर कहाँ से कहाँ खिसककर चले गये।

सुनीध—यह कोई अच्छी बात नहीं है, सम्राट् !

अजातशत्रु—अच्छी बात नहीं है, यह क्या समझाओगे तो समझूँगा ? लेकिन अब तो मगध की गंगा गोमुखी का बाँध तोड़कर निकल चुकी। अब कोई ऐरावत उसे रोक नहीं सकता, कोई जल उसे सोख नहीं सकता। जिस तरह अनेक गलतियाँ हो चुकीं, एक गलती और करूँगा।

सुनीध—लेकिन, सोचिए सम्राट्, जो घटनाएँ दुर्भाग्यवश घट चुकी, उसके बाद कोई वृज्जिनारी अब मगध की पटरानी बनना भी स्वीकार कर सकती है ?

अजातशत्रु—नारियाँ स्वयं आती नहीं है, लाई जाती है !

सुनीध—जिसका नतीजा हम लंका में देख चुके हैं ! वृज्जियों में ही तो विदेह भी है। उनकी नारियों में एक अलौकिकता है, सम्राट् ! उनपर जबरदस्ती किया जाना कभी सुफल नहीं लाता। क्या बन्दरो की सेना बन सकती है ? क्या समुद्र बाँधा जा सकता है ? क्या सोने का महल लाह के ऐसा धधक सकता है ? लेकिन एक अलौकिक नारी के चलते ये सब अलौकिक बातें होकर रहीं।

अजातशत्रु—लेकिन अजातशत्रु भी एक अलौकिक पुरुष है, सुनीध !

सुनीध—क्या यह वर्ष की बाणी नहीं है, सम्राट् ?

अजातशत्रु—(गुस्से से उमका चेहरा लाल हो जाता है—सिर हिलने लगता है) सुनीध, सुनीध, तुम बहक जाया करते हो। तुम मेरे सखा हो, किन्तु, तुम्हें याद रखना चाहिए कि सम्राट् हमेशा ही सम्राट् है। और मगध-सम्राट् की यह आज्ञा अचल-अटल है कि वैशाली पर हमें विजय प्राप्त करनी ही है—अम्बपाली को राजगृह लाना ही है।

सुनीध—सम्राट् की आज्ञा हमारे सिर पर है (वह सिर झुकाकर अपनी भक्ति प्रगट करता है) वैशाली पर तो हमें विजय प्राप्त करनी ही है। वृज्जियों ने इधर अजीब

धमाचौकड़ी मचा रखी है। अपने संघबल पर उन्हें इतना घमंड हो गया है कि उन्होंने मस्तिष्क का संतुलन तक खो दिया है। गंगा पर चलनेवाले हमारे बजड़ों से वे कर बसूलते हैं, उन्हें लूटते हैं। गंगा-पार कर वे हमारे गांवों और छावनियों पर छापा मारते हैं। उन्हें रोकने के लिए हमने जो पाटलिग्राम बसाया है, उसे तंगतरीज किये रहते हैं। वैशाली पर विजय प्राप्त करना तो अनिवार्य है, सम्राट् !

अजातशत्रु—मैंने आज महामंत्री वस्सकार को भगवान बुद्ध के पास इसी काम में सलाह लेने को भेजा है—मैं उनकी प्रतीक्षा में ही हूँ। (गूढ़कूट की ओर नजर उठाता है)

सुनीध—महामंत्री तो इसके लिए कब से न तैयारियाँ कर रहे हैं। गंगा किनारे की छावनियों को वृक्षत किया है, जंगी बेड़ों का पुनःसंगठन किया है, नये अस्त्र-शस्त्र बनवाये हैं, सेना का भी नवीन संगठन किया है, यहाँ तक कि राजधानी के परकोटे की मरम्मत तक को नहीं छोड़ा है। साम्राज्य का सौभाग्य है कि उसे वस्सकार-से महामंत्री मिले है।

अजातशत्रु—तुम्हारा कहना बिल्कुल सही है।

उसी समय मगध का महामंत्री वस्सकार पहुँचता है—एकदम बूढ़ा—सभी बाल सन-से सुकेदे—चेहरे पर भुर्रियों के साथ कूटनीतिज्ञता की छाप—आगे के दो दाँत टूटे, जिससे आवाज में विकृति—बुढ़ापे के कारण उसका सिर रह-रहकर हिल उठता है—अजातशत्रु उससे पूछता है—

अजातशत्रु—क्यों महामंत्रीजी, भगवान ने क्या कहा ?

वस्सकार—मैंने आपसे कहा था न, भगवान बुद्ध को वृज्जियों से स्वाभाविक अनुराग है। और, मैं कहूँ, उनके लिए उनमें पक्षपात भी है !

अजातशत्रु—महामंत्री !

वस्सकार—मगध का महामंत्री अपनी जिम्मेवारी समझते हुए बोलता है, सम्राट् ! ज्योंही मैं उनके पास गया और उनसे सम्राट् का सदेश कहा, वह आनंद से पूछने लगे—

“क्यों आनंद, क्या वृज्जियों की परिषद् बार-बार बैठती और उसमें भरपूर उपस्थिति होती है ?

“क्या वृज्जि इकट्ठे जुटते, इकट्ठे उठते और इकट्ठे अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों को करते हैं ?

“क्या वृज्जि बाकायदा कानून बनाये बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और न बने हुए नियमों का उच्छेद करते हैं ?

“क्या वृज्जि बुद्ध-बुजुगों का सम्मान करते और उनकी सुनने लायक बातों को सुनते और मानते हैं ?

“क्या वृज्जि अपनी कुमारियों और नारियों पर जोर-जबरदस्ती नहीं करते और उनकी कदर और इज्जत करते हैं ?

“क्या वृज्जि अपने चैत्यों, मंदिरों और समाधियों की रक्षा करते हैं ?

“क्या वृज्जि अहंतों और तपस्वियों का आदर-सत्कार करते हैं ?”

और, इनका उत्तर आनन्द से ‘हाँ’ में सुनकर वह तमककर बोल उठे—‘तो आनन्द, वृज्जियों की उन्नति ही होगी, उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकेगा !’

अजातशत्रु—(उसकी भवो पर बल पड़ जाते हैं, वह तमतमा कर बोलता है)
ऐसा ? तो महामंत्री, आपने भगवान से क्यों नहीं कह दिया कि वे वृज्जि चाहे जितने समृद्ध हों, चाहे इनका जितना प्रभाव हो, मैं इन्हें उखाड़ डालूँगा, नष्ट कर दूँगा ! जब मगध की गंगा गोमुखी से चल चुकी, तो बीच में कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती !
(क्रोध में वह घूमने लगता है)

बस्सकार—मगध के सम्राट के अनुकूल ही यह वचन है। लेकिन, क्या मगध के महामंत्री का काम साधु-तपस्वियों से शास्त्रार्थ करना ही रह गया है ? भगवान को कहने बीजिए, मैंने वैशाली-विजय की सारी तैयारियाँ कर रखी हैं, और अब उनके कथन से जिस सूत्र का पता चला उसका भी निराकरण कर लेना है।

अजातशत्रु—कौन-सा सूत्र ?

बस्सकार—भगवान बुद्ध के कहने का तात्पर्य सिर्फ यह था कि वृज्जियों में कुछ ऐसी एकता और निष्ठा है कि वे जीते नहीं जा सकते। अब मैं उस एकता को तोड़ूँगा, निष्ठा को भ्रष्ट करूँगा। मैंने उसके लिए राह भी सोच ली है !

अजातशत्रु—कौन-सी राह है वह, महामंत्रीजी !

बस्सकार—बहुत ही सीधी-सी राह। मैं कल दरबार में वृज्जियों का प्रसंग उठाऊँगा और उनकी बड़ी तारीफ करूँगा। आप इसके लिए मुझे खूब फटकार बतायेंगे। मैं इसके बावजूद, दो दिन बाद, वृज्जियों के पास गुप्त रूप से प्रेमोपहार भेजूँगा। आप उस दूत को पकड़वा लेंगे। पकड़कर मुझे राजद्रोही घोषित कीजिए, अपमानित कीजिए, मेरा सिर गंजा कराइए और मुझे मगध से निष्कासन की सजा दीजिए—बस, आपको सिर्फ इतना ही करना है, बाकी मैं कर लूँगा !

अजातशत्रु—(चकित होकर) सिर गंजा कराना ! महामंत्री, नहीं-नहीं, मुझसे यह नहीं होगा।

बस्सकार—(हँसकर) गंजे सिर का प्रभाव देश पर कितना बढ़ रहा है, शायद सम्राट ने इसपर ध्यान नहीं दिया है। और, मुझे इस काम में जल्दी करनी है। भगवान बुद्ध के वैशाली जाने के पहले ही मुझे अपना जादू जगाना है—कौन जाने, अपनी स्वाभाविक अनुरक्ति के कारण भगवान उन्हें हमारी मंशा की खबर न कर दें ?

अजातशत्रु—महामंत्रीजी, यह क्या कह रहे हैं आप ?

बस्सकार—सम्राट, भावुकता और राजधर्म साथ-साथ नहीं चला करते।

वैशाली की अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी—इसके पवित्र जल से वृज्जियों का राज्याभिषेक होता, अतः दूसरों के लिए इसके स्पर्श तक की सख्त मुमानियत—चारो ओर सख्त

पहरे पड़ रहे—इसके जल में विहार करनेवाले पंछी बाहर न जायें, इसके लिए पानी के ऊपर लोहे का जाल लगा—

इस पुष्करिणी की शोभा का क्या कहना ? सरोवर में श्वेत, नील, लाल कमल खिले हुए—कमलों पर भौरों का गुजार—जहाँ-तहाँ जलपंछी किलोल कर रहे—जहाँ-तहाँ भावुक युवक-युवतियों का नौका-विहार—

सांध्यभ्रमण के लिए आये वैशाली के नागरिक और नागरिकाओं का जमघट— कोई टहल रहा है, कोई पक्के घाट के सगमरमर के चबूतरे पर बैठा है, कोई बादलों के साथ डूबते हुए सूरज की आँखमिचौनी देख रहा है, तो कोई कमलों पर उसकी किरणों का खिलवाड़ निरख रहा है—कहीं-कहीं गपशप भी चल रही है—

एक चबूतरे पर महामंत्री वस्सकार अकेला बैठा है—भिक्षुको-सा है वेश उसका— सिर के बाल मुँड़े, पीला लबादा तन पर, हाथ में एक मुमरनी—उसका ध्यान न सरोवर पर है, न अस्ताचलगामी सूरज पर, न बादलों पर—वह टहलनेवाले नागरिकों में से एक-एक को घूरता है, जैसे उनके चेहरों को पढ़न की कोशिश कर रहा है—बीच-बीच में मुमरनी तेजी से घुमाते वह बुदबुदा उठता है—

एक नागरिक को अकेला, सिर नीचा किये, टहलता देखकर वह उसके निकट जाता है—उस नागरिक की कमर से लम्बी तलवार लटक रही है, पीठ पर ढाल है—उसके चेहरे से अभिमान और आदित्य टपका पड़ता है—

वस्सकार—क्यों, आर्य अश्वसेन, आप उदास क्यों दीखते हैं ?

अश्वसेन—ओहो, मगध के महामंत्री, नमस्ते ।

वस्सकार—नमस्ते आर्य ! आपके चेहरे पर यह उदासी क्यों है ?

अश्वसेन—(आश्चर्य से) उदासी ? उदासी कहाँ है ? यों ही कुछ सोच रहा था । कहिए, आपको वैशाली कैसी पसंद आ रही है ?

वस्सकार—(आनन्द में) वैशाली ! त्रिभुवन-मुन्दरी नगरी ! क्या कहना है ! मैं तो इस नगरी का पुराना प्रेमी हूँ और उसी प्रेम का फल . . . (बनावटी उदासी लाकर उसाँसें लेता है)

अश्वसेन—(उत्तेजित स्वर में) हाँ, हाँ, उस नर-पिशाच अजातशत्रु ने इस वैशाली-प्रेम के कारण आपके साथ जो क्रूर व्यवहार किया है, क्या हम वृज्जि उसे भूल सकते हैं ? हम इसका बदला एक दिन उससे चुकाकर रहेंगे ।

वस्सकार—आह ! वह दिन मुझे देखने को मिलता !

अश्वसेन—मिलेगा, जरूर मिलेगा । आपका अपमान वृज्जिसंघ के हर नागरिक के बिल में काँटे-सा चुभ रहा है । आपको देखकर किस नागरिक के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला नहीं धधक उठती ? किसकी आँखों से खून के आँसू नहीं टपकने लगते ? उफ, उसने आपके सिर के बाल तक मुँडवा डाले ! नरपिशाच ! !

वस्सकार—नर-पिशाच तो है ही । खैर, उसने बाल मुँडवा दिये, अच्छा ही किया !

अम्बपाली :

मैं भगवान बुद्ध की शरण के समीप तो हो गया । (अपने गंजे सिर पर हाथ फेरता है)
अब सिर्फ भिक्षापात्र की कमी है ! (ऊपर देखकर कुछ मंत्र बुदबुदाता है)

अश्वसेन—भिक्षापात्र नहीं, शासन-सूत्र ! जबतक आपके हाथों में मगध का शासन-सूत्र नहीं आ जाता, हम चैन नहीं लेगे । खैर, मजे में आप हैं न ? कोई कष्ट तो नहीं ?

वस्सकार—बैशाली में कष्ट ? (कुछ रुककर) लेकिन मैं अब सोचने लगा हूँ, बैशाली आकर मैंने अच्छा नहीं किया ।

अश्वसेन—ऐसा क्यों मंत्रिवर ?

वस्सकार—जिसकी पूजा आदमी करे, उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है । दूरत्व हमारी श्रद्धा को मजबूत करता है, निकटता तो उचाट-सी ला देती है । अतिपरि-चयादवज्ञा

अश्वसेन—तो बैशाली से आपका जी उचट रहा है ?

वस्सकार—उचाट ही कहिए । यहाँ कुछ चीजें ऐसी देख रहा हूँ, जिससे सोचता हूँ, यहाँ न आना ही ठीक होता । आदमी जिसके साथ हृदय की गहराई से प्रेम करता है, उसमें तनिक-सी भी त्रुटि देखना पसंद नहीं करता ।

अश्वसेन—आपने यहाँ कोई त्रुटि देखी है क्या ?

वस्सकार—जाने दीजिए इन बातों को । लकड़ी पर रंदा देने से वह चिकनी होती है, बात पर रंदा देने से वह खूबड़ी ही होती जाती है । आह ! कहाँ भगवान बुद्ध के मुँह से वह तारीफ और कहाँ बैशाली के नागरिकों का यह (बड़ी लम्बी साँस लेता है और गरदन जोरों से हिलाने लगता है)

अश्वसेन—यह 'यह' क्या, बोलिए !

वस्सकार—मत कहलाइए मुझसे आर्य ; जाने दीजिए । आइए, हम-आप भी बैठकर संध्या का यह मनोरम दृश्य देखें, जिस तरह सब देख रहे हैं । जिन्दगी में बहुत चीजों के भूल जाने में ही कल्याण है, आर्य !

अश्वसेन—नहीं-नहीं, आपको कहना पड़ेगा ।

वस्सकार—(सिर ऊपर उठाकर) भगवान बुद्ध, तुम्हारी शतशः प्रशंसित नगरी की यह वशा ! (अश्वसेन से) कहूँ, आप नाराज तो नहीं होंगे ?

अश्वसेन—आपपर नाराज ? यह क्या बोल रहे हैं, मंत्रिवर !

वस्सकार—मुझपर ! मेरी तो आप गर्दन भी काट ले, तो मैं सौभाग्य समझूँ । बैशाली के एक नागरिक के हाथ से मृत्यु पाने से बढ़कर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है आर्य ?

अश्वसेन—तो क्या बात है ?

वस्सकार—अच्छा सुनिए, लेकिन, फिर प्रार्थना है, नाराज मत होइएगा । इसी शर्त पर मैं कह रहा हूँ । (उँगली दिखाते हुए) आप उन्हें पहचानते हैं ?

अश्वसेन—कौन, वह ? वह तो वसुबंधु हैं ।

बस्सकार—आपसे उनका कोई भगड़ा है ?

अश्वसेन—भगड़ा ? बैशाली के नागरिक आपसे में नहीं भगड़ते ।

बस्सकार—कोई खान्दानी दुश्मनी ?

अश्वसेन—आप यह क्या कह रहे हैं ?

बस्सकार—इसीलिए न कहा कि जाने दीजिए, मुझसे मत पूछिए । नहीं-नहीं, मुझे बैशाली छोड़ देना चाहिए और किसी अरण्या में जाकर जप-तप करना चाहिए । भगवान बुद्ध ! जल्द मुझे अपनी शरण में ले लो । (भट ध्यानमग्न होने का बहाना करता है, फिर किसी अलक्षित शक्ति को नमस्कार करता-सा दीखता है)

अश्वसेन—महामंत्री, आपको यह रहस्योद्घाटन करना ही होगा ।

बस्सकार—नहीं-नहीं, मैं परदेश में हूँ । मुझे इन भंभटों में नहीं पड़ना चाहिए । मैं आपसे कहूँ, आप उनसे पूछें, वह फिर मुझसे पूछें । यों बाते बढ़ें, एक विषाक्त वृत्त तैयार हो । अब दुनिया की भंभटों में मुझे नहीं पड़ना है—जाने दीजिए इन बातों को ।

अश्वसेन—इसमें पूछताछ का कहीं सवाल उठता है, महामंत्री, बैशाली के नागरिक अपने उन महान अतिथि की बात आँखें मूँदकर मानेंगे, जो उन्हीं के लिए आज इतनी पीड़ा पा रहे हैं । आप कहिए ।

बस्सकार—तो आप धीरज से सुनें, गुस्सा मत हों । न जाने, वसुबंधुजी को आपसे कौन-सी खान्दानी दुश्मनी या व्यक्तिगत अनबन है

अश्वसेन—(बीच ही में बात काटकर) मैंने आपको पहले ही कह दिया कि मुझसे उनकी किसी तरह की दुश्मनी या अनबन नहीं है ।

बस्सकार—तो क्या उनका कहना ठीक है ?

अश्वसेन—क्या ?

बस्सकार—भगवान बुद्ध ! तुम्हीं को साक्षी रखता हूँ, मेरी जिह्वा ठीक वे ही बाते कहें, जिन्हें कानों ने सुना है । काश, ये बाते भूठी होतीं !

अश्वसेन—(भुंभलाकर) यह क्या पहली बुझा रहे हैं, महामंत्री ? मैं बच्चा नहीं हूँ ।

बस्सकार—मैं कहता हूँ, एक बच्चा भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता । वह भी इसे सुनकर कहनेवालों की आँखें भपट्टा मारकर निकाल लेना चाहेगा । आदमी अपनी बहादुरी पर लानत शायद बर्दाश्त भी कर ले, परन्तु अपने खान्दान पर..... (दाँत से जीभ काटता है)

अश्वसेन—बहादुरी पर लानत ! खान्दान पर.....ऐ (उसकी भवों पर तेवर चढ़ जाते हैं)

बस्सकार—मैंने पहले कहा, क्रोध मत कीजिए, पहले धैर्य से सुनिए । बीर सुनने में धीरज रखते हैं, जल्दी तो बदला लेने में की जाती है !

अश्वसेन—(गुस्से से) क्या वसुबंधु ने मुझे गाली दी है ?

अन्वपाली :

वस्सकार—आर्य अश्वसेन, में तो इसे गाली से भी बुरी चीज समझता हूँ । किसी को कायर कह देना, फिर उसकी कायरता को खान्दानी बताना—किसी के मरे हुए बाप-दावों को पगड़ी उछालना, राम, राम !

अश्वसेन—(उत्तेजना में तलवार खींच लेता है) बोलिए, मंत्रिवर, उसने क्या कहा ? आज यह तलवार उसके सिर पर नाचेगी ।

वस्सकार—आह ! इसी तलवार पर तो बात चली । कल उनसे मेरी बातें हो रही थीं । मैंने आपकी चर्चा की—कहा, तीर तो सभी चला सकते हैं, लेकिन, तलवार के हाथ में अश्वसेनजी का मुकाबला कोई नहीं कर सकता ।

अश्वसेन—(फखू से) आपने सही कहा, महामंत्री ! वृज्जिसंध में मेरी तलवार का मुकाबला कोई नहीं कर सकता ।

वस्सकार—मैंने खुद देखा है—विजयोत्सव के दिन आपके हाथ के जो करतब देखे, क्या वे कभी भूल सकते हैं ? लेकिन, देखिए, वसुबंधुजी की हिमाकत ! आपकी तारीफ मेरे मुंह से सुनते ही चिल्ला पड़े

अश्वसेन—जल्दी कहिए, वह क्या बोला—(तलवार हिलाता है)

वस्सकार—(ऊपर देखते) भगवान बुद्ध ! मुझसे सच ही कहलाना । (अश्वसेन से) चिल्लाकर बोले, वह तलवार क्या चलायगा, वह तो कायर है, वही क्या, उसकी सात पुस्त (रुककर) माफ कीजिए, कहते मुझे शर्म आती है, गुस्से से मेरा बूढ़ा शरीर भी कांप उठता है । (शरीर कांपने लगता है)

अश्वसेन—काफी है महामंत्री, अब वह देखे कि मैं बहादुर हूँ, या कायर ; और स्वर्ग में जाकर मेरे बाप-दावों से भी आजमाइश कर ले !

अश्वसेन तलवार घुमाते उस ओर दौड़ने जा रहा है कि वह उसे रोकने की बनावटी चेष्टा में कहता है—

वस्सकार—सुनिए, सुनिए !

अश्वसेन—नहीं-नहीं, मैं सुन नहीं सकता ! उसने मेरे खान्दान

वस्सकार—आपका सोचना ठीक है, कोई भी योग्य संतान अपने खान्दान का अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकती—जो बर्दाश्त करे, वह इन्सान नहीं है ! लेकिन, सुनिए

अश्वसेन—नहीं, नहीं—

वह वसुबंधु की ओर तेजी से दौड़ पड़ता है—वसुबंधु प्राकृतिक दृश्यो के देखने में तल्लीन है—उसके पास जाते ही वह बोल उठता है—“उठो, सँभलो, तलवार निकालो”—अकारण अपनी मानसिक आनन्द-प्राप्ति में बाधा पड़ते देख वसुबंधु भी कुछ क्रोध में आ जाता है, कहता है—

वसुबंधु—यह तुम क्या बक रहे हो ?

अश्वसेन—बक रहा हूँ ? उल्टे कहते हो, बक रहा हूँ ! (गरजकर) सँभलो, तलवार निकालो ! (तलवार उसके सिर पर उठाता है)

वसुबंधु—क्या पागल हो गये हो ?

अश्वसेन—में पागल ! पागल हूँ, तो लो—सँभलो, एक...दो...तीन...

वह तलवार चलाता है—बसुबंशु हाथ उठाकर तलवार रोकना चाहता है—तलवार लगते ही उसका हाथ कटकर दो-टुक हो जाता है—हाथ को काट उसकी खोपड़ी पर तलवार गिरती है—एक चीख के साथ वह जमीन पर गिर जाता है—खून का फव्वारा चलने लगता है—

उसके गिरते ही, बस्सकार, जो अलग खड़ा तमाशा देख रहा था, वहाँ से गायब हो जाता है—चीख सुन नागरिक उधर दौड़ते हैं और अश्वसेन को पकड़ लेते हैं—थोड़ी देर हलचल रहती है—फिर घायल बसुबंशु और अपराधी अश्वसेन को लेकर लोग संधागार की ओर रवाना हो जाते हैं—सरोवर के घाटो पर सप्ताटा छा जाता है—

भुटपुटे के अंधकार में अम्बपाली दिखाई पड़ती है—उसके परिधान में सादगी है—जूड़े पर, हाथों में कुछ फूल के गहने—गले में फूल की हल्की माला—उसके पीछे चयनिका है—अम्बपाली चबूतरे पर बैठकर, उदास मुद्रा में कहती—

अम्बपाली—बैशाली के अच्छे दिन नहीं बीखते, चयनिके ! आज जो कुछ हुआ, वह हमारे लिए खतरे की घंटी है ।

चयनिका—हाँ, भद्रे, बैशाली में ऐसा वृक्ष कभी नहीं देखा गया ।

अम्बपाली—मुझे तो इस घटना के पीछे किसी के अवृश्य हाथ दिखाई पड़ते हैं । बैशाली के नागरिक अपनी तलवार अपने भाइयों के सिर पर चलाये, यह महान आश्चर्य की बात है !

उसी समय वृजिसंघ के महामात्य चेतक दिखाई पड़ते हैं—गोरे रंग का, लम्बा, वृद्ध पुरुष—सुफेद दाढ़ी, सिर से सुफेद बालों की लटे कंधे तक लटक रहीं—कंधे से घुटने तक एक सुफेद लबादा—चिन्ता से चूर है उनका चेहरा—वह अम्बपाली की बातें सुन रहे थे—प्रगट होकर कहते हैं—

महा० चेतक—आपका कहना बिल्कुल सही है, आर्य !

अम्बपाली—(ससम्भ्रम खड़ी होती हुई) महामात्य, आज यह क्या हो गया ?

महा० चेतक—यह आज नहीं हुआ है, इसके लिए कुछ दिनों से क्षेत्र तैयार किया जा रहा था ।

अम्बपाली—कुछ दिनों से ?

महा० चेतक—हाँ, बेवि ! बैशाली के जीवन-सरोवर में एक गंदी मछली घुस आई है, हमारे नागरिकों के सम्मिलित परिवार की टोकरी में एक सड़ी नारंगी आ गई है—पानी जहरीला बन रहा है, एक-एक नारंगी सड़ती जा रही है !

अम्बपाली—उस मछली को निकाल डालिए, उस नारंगी को फेंक दीजिए—आप हमारे महामात्य हैं, आपको सब अधिकार हैं ।

महा० चेतक—यही गणतंत्र की दुर्बलता है । आप जानते हुए भी तब तक कुछ नहीं कर सकते, जब तक बहुमत को आप पक्ष में न कर लीजिए । और जो बुरे हैं, वे भले से कहीं ज्यादा काइयाँ होते हैं ।

अम्बपाली :

अम्बपाली—यह अजीब बात !

महा० चेतक—हाँ, अजीब बात होने पर भी यथार्थ बात यही है। (कुछ ठहरकर, बड़ी ही गम्भीरता से) मेरा माथा तो उसी दिन ठनका, जिस दिन सुना कि मगध का महामंत्री वैशाली का पक्ष लेने के लिए निकाल दिये गये हैं और वह वैशाली आ रहे हैं। मंत्री का पद कोई दरबान का पद नहीं है कि आप जिसे आज रखे, कल निकाल दे सकें। योग्यता की सर्वश्रेष्ठता और भक्ति की पराकाष्ठा ही किसी को उस महान पद पर पहुँचा सकती हैं और वहाँ पहुँचकर आदमी राज्य की इतनी गुप्त बातें जान जाता है कि उसे निकालने के पहले राजा या राज्य को सौ बार सोचना पड़ेगा, और कदाचित् ऐसा मौका आ गया तो फिर निकालने के बाद उसे बुद्धिमान के घर में जाने का खुलेआम मौका तो दिया ही नहीं जा सकता है। दंडित मंत्री का स्थान फाँसी का तख्ता होगा या कैदखाने की कालकोठरी—देशनिष्कासन की गलती तो की ही नहीं जा सकती !

अम्बपाली—(आश्चर्य में) तो आपको शंका है, मगध के महामंत्री का इसमें हाथ है ?

महा० चेतक—शंका नहीं, निश्चय है। जब वह वैशाली आये, हमारे नागरिकों के आनन्द की सीमा न रही। परम हितैषी, हार्दिक मित्र मानकर उनका धूमधाम से स्वागत हुआ। लोगों में आनन्द का ऐसा ज्वार आया था कि वे बुद्धि की बात सुन नहीं सकते थे। मैंने इसमें खतरा देखा, उनके पीछे गुप्तचर रखा। गुप्तचर ने जो खबरे दी हैं, उनका एक प्रत्यक्ष प्रमाण भी आज हमें मिल गया।

अम्बपाली—(आश्चर्य में आँखें फाड़ती) अरे !

महा० चेतक—हाँ, बड़ी चालाकी से उन्होंने जाल बिछाया है। मान लीजिए, वो नागरिक बड़े दोस्त हैं, आपस में घुलघुलकर बातें कर रहे हैं। उसी समय उनमें से एक को वह अलग बुलायेंगे, यह कहकर कि एक जरूरी बात दरिदास्त करनी है। और, उसे बुलाकर महज मामूली बात पूछेंगे—‘क्यों जी, लोग खेत जोतते हैं ?’ ‘आज आपने बाल कौन-सी खाई ?’ ‘आप कै भाई हैं ?’ आदि। लेकिन, ये बातें भी इस संजीदगी से करेंगे कि उसका साथी सोचेगा, महामंत्री से कोई गहरी, महत्वपूर्ण बात हो रही है। उसके मन में सन्देह पैदा होगा। और जब उसका साथी पहुँचकर यह कहेगा कि मगध के महामंत्री ने सिर्फ ये मामूली बातें की हैं, उसका सन्देह पक्का हो जायगा—दोनों का दिल टूटेगा, मंत्री बेर में परिणत हो जायगी !

अम्बपाली—(कांपती हुई) चालाकी की हद है !

महा० चेतक—यही नहीं, धनी-गरीब, ऊँच-नीच, वीर-कायर आदि तरह-तरह के भेदभाव के सवाल उठाकर वह हमारी एकता को छिन्न-भिन्न करने पर तुले हुए हैं। इस हत्याकांड के ठीक पहले आर्य अश्वसेन से उनकी बातें हो रही थीं—जरूर, उन्हीं के उकसाने से यह कांड हुआ है !

अम्बपाली—और, देखने में कितने साधु लगते हैं, हमेशा बुद्ध भगवान का नाम लेते हैं !

महा० चेतक—ऐसे लोगों का साधुपन उनकी ढाल होती है, और भगवान का नाम उनकी तलवार ! सीधा शिकार सिर्फ शेर करता है, और सभी जानवर, जिनका आदमी सिरताज है, हमेशा आड़ लेकर निशाना लेते हैं, भद्रे !

अम्बपाली—महामात्य, संघ की रक्षा का भार आपके सिर है। ऐसे आदमियों से संघ को बचाना आपका कर्तव्य है। आप इन्हें गिरफ्तार क्यों नहीं करा लेते ?

महा० चेतक—अगर आज मे इन्हें गिरफ्तार कराऊँ, बृजिसंघ में हलचल मच जायगी। यह शहीद बन जायेंगे। इनका पक्ष और विपक्ष लेकर आन्दोलन खड़ा होगा। और इसके बाद अजातशत्रु जरूर हमारे देश पर चढ़ दौड़ेगा। मुझे जो खबर मिली है, वह इसके लिए तैयारियाँ भी कर रहा है।

अम्बपाली—(आश्चर्य में) क्या ? वह वैशाली पर चढ़ाई करनेवाला है ?

महा० चेतक—मुझे खबर तो यहाँ तक मिली है कि उसने इसके लिए पाटलिप्राय के निकट सेनाएँ इकट्ठी कर रखी हैं, गंगा पार करने के लिए बड़े तैयार कर लिये हैं और अब सिर्फ उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में है।

अम्बपाली—आह ! देवपुरी वैशाली ! इसपर राक्षस का शासन होगा ? इसे बचाइए, महामात्य ! (व्याकुल-सी हो जाती है)

महा० चेतक—मे इसके लिए सयत्न हूँ, पर आपकी जिम्मेवारी भी इस बारे में कम नहीं है, आर्ये। जो काम अधिकार से नहीं कराया जा सकता, वह प्रेम से आसानी से कराया जा सकता है। आपके पास नौजवानों का बिन-रात प्रवेश है। आप उनकी ओर ध्यान दीजिए। नीति से कला का असर ज्यादा होता है। और, वह कला व्यर्थ है, जो मातृभूमि के, संकट-काल में, काम न आये। आप अपनी कला का उपयोग इस काम में करें। अगर नौजवानों का हृदय ठीक रहे, उनमें पारस्परिक एकता और प्रेम हो, उनमें आदर्श पर उत्सर्ग होने की भावना बनी रहे, तो फिर उस देश या जनपद को कोई भी पराजित नहीं कर सकता।

अम्बपाली—आपने सही कहा, महामात्य ! आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर। कुछ दिनों से मैं व्याकुल-सी थी—मेरा यह सौन्दर्य, यह कला, क्या सिर्फ मनोरंजन की चीज है ? तुच्छ मनोरंजन ! !...

महा० चेतक—मनोरंजन तुच्छ चीज नहीं है, भद्रे। मनोरंजन जिन्दगी की एक अहम जरूरत है। जहाँ मनोरंजन नहीं, वहाँ जीवन नहीं। आपके द्वारा वैशाली की तरफ पीढ़ी जीवन पाती रही है—जिन्दा-विली ही जिन्दगी है, भद्रे। लेकिन हर चीज के उपयोग पर सामयिकता की छाप होनी चाहिए। आज रोशनी बेती है, जलाती भी है। कला मुलाती है, तो जगाती भी है। अपने नागरिक जीवन के गोरखबंधों से परीशान नागरिकों को आज तक आपने नृत्य और संगीत की मधुर नींद दी—क्षीण शक्ति के पुनःसञ्चय के लिए मौका दिया। लेकिन, आज सतत जाग्रत रहने का समय है। आज उसी कला को जागरण का शस्त्रनाद करने दीजिए !

अम्बपाली :

अम्बपाली—(गर्व-मिश्रित स्वर में) ऐसा ही होगा, महामात्य ! अम्बपाली सिद्ध कर वेगी, वह गौरी ही नहीं, दुर्गा भी है । वह सोहनी ही नहीं, भैरवी भी सुना सकती है ।

महा० चेतक—(आशीर्वादात्मक ढंग से हाथ उठाते) तथास्तु !

३

वैशाली का संथागार और उसके सामने का विस्तृत मैदान—संथागार के गुम्बदों से शंख और भेरी की ध्वनि हो रही है—

अज्ञातशत्रु की सेना वैशाली पर चढ़ाई करने को आ रही है, उसी का सामना करने के लिए नागरिकों का यह आह्वान किया जा रहा है—

इस ध्वनि को सुनकर धीरे-धीरे नागरिक मैदान में आते हैं—लेकिन इनमें उत्साह का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता—न जयनाद है, न भुजाओं की उछाल—एक-दूसरे को यों देख रहे हैं, जैसे पुराना बैर चुकाने का मौका मिला हो—एकाध जगह उत्साह की तरंग देखी भी गई, एकाध बार जयनाद भी हुआ, तो वह निराशा के गहरे गर्त में तुरत विलीन हो गई—

संघ के महामात्य चेतक संथागार से निकलकर सभामंच पर आते हैं और नागरिकों को देखते हैं—देखते ही उनका चेहरा उतर आता है—भरी हुई आवाज में नागरिकों को संबोधित करते हैं—

महा० चेतक—नागरिकों, क्या आपको मालूम है, यह शंख क्यों फूँका गया है, यह भेरी क्यों बजाई गई है ? हमारे वृज्जिसंघ के पुराने शत्रु अज्ञातशत्रु ने हमपर चढ़ाई की है !

एक नागरिक—क्यों, अज्ञातशत्रु हमपर क्यों चढ़ाई करेगा ?

दूसरा नागरिक—क्या हमारी तरफ से उसे छोड़ा गया है ?

तीसरा नागरिक—चढ़ाई की है, तो उससे हमारा क्या ?

महा० चेतक—बस, बस, नागरिकों ! मैं आज का समा देखकर ही वंग हूँ । यही वैशाली है, यही संथागार और उसका मैदान है । शंखनाद होते ही वैशाली के घरों में कोई भी नौजवान नहीं रहता था । सभी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित यहाँ इकट्ठे हो जाते थे । तीसरी बार भेरी बजते-न-बजते इस विस्तृत मैदान में तिल धरने की जगह नहीं रह जाती थी । नागरिकों के जयनाद, शस्त्रों की भनभन, घोड़ों की हॉस और हाथियों के चिंगाड़ से आसमान गूँज उठता था । सब कहते थे, संघ पर क्या संकट आया ? सब पूछते थे, संघ का कौन दुश्मन है ?—हम उसका शमन करेंगे, हम उसकी आँख निकाल लेंगे । और आज वही वैशाली—आह वैशाली ! (उनका गला भर आता है)

एक नागरिक—लेकिन, हमें पूछने का हक है ?

दूसरा नागरिक—हमें युद्ध का औचित्य तो मालूम होना चाहिए ।

तीसरा नागरिक—हिंसा मानवीय कर्तव्य नहीं, यह राक्षसी वृत्ति है !

ऐसे सवालो को सुनकर कुछ नागरिक, जिनमें जोश और उत्साह था, लेकिन उमड़ा न था, तमतमाकर खड़े होते हैं—लेकिन, उन्हें बोलने के पहले ही महामात्य चेतक हाथ के इशारे से रोक देते हैं और शान्त भाव से कहते हैं—

महा० चेतक—नागरिको, गणतंत्र के मानी ही यह है कि हर नागरिक राज्य के कामों में अपनेको हिस्सेदार समझे—अपनी जिम्मेवारी निभाये, संघ के पदाधिकारियों से जिम्मेवारी वसूल करे। किन्तु, आज तो अजीब सवाल पूछे जा रहे हैं। संघ ने युद्ध नहीं छोड़ा है कि आप उससे औचित्य का उत्तर माँगे। युद्ध का औचित्य पूछना है, तो आप अजातशत्रु से पूछें—इसीलिए तो संघ ने आपका आह्वान किया है। लेकिन याद रखिए, चढ़ाई करनेवाले दुश्मन से आप जबान से नहीं पूछ सकते, ऐसी जबानो को वह तराश लेगा। आक्रमणकारी एक ही जबान समझता है, वह है प्रत्याक्रमण में उठाई गई तलवार की झनझन या चलाये गये तीर की सनसन।

महामात्य के इस कथन पर उत्साही दल में और जोश आ जाता है, उनमें से नागरिक उठकर कहने लगते हैं—

एक नागरिक—हम तलवार की जबान से ही उसे समझायेगे।

दूसरा नागरिक—हम उसे उसकी गुस्ताखी का मजा चखायेंगे।

तीसरा नागरिक—बोलो, वृजिसंघ की जय, गणतंत्र की जय, वैशाली की जय !

जयजयकार करनेवालो की सख्या बढ़ती जाती है—चारो ओर हलचल और सरगर्मी दिखाई पड़ती है—जिस नागरिक ने पहले विरोध की आवाज उठाई थी, वह आगे बढ़ता, मभामच के निकट जाता और नागरिको को सुनाकर कहता है—

पहला नागरिक—महामात्य, क्या मुझे नागरिको को सम्बोधित करने की आज्ञा मिल सकती है ?

महा० चेतक—निश्चय ही ! संघ ने सब नागरिकों को बोलने-चलने का समान अधिकार दे रखा है। बोलिए—

पहला नागरिक—नागरिक भाइयो, हमे अपने गण पर नाज है, अपने संघ पर नाज है। अपनी प्यारी वैशाली और प्यारे वृजिसंघ पर आये संकट को टालने के लिए जो योग न दे, उसकी जिन्दगी पर लानत ! (कुछ नागरिक उत्साह में 'वृजिसंघ की जय' चिल्लाते हैं—वह तमककर कहता है) ठहरिए, अधीर मत होइए, बुद्धि से काम लीजिए। अगर वृजिसंघ और वैशाली प्यारी चीज हैं, तो आदमी की जान भी कम कीमती नहीं। आदमी की जान संसार में सबसे कीमती चीज है—सबसे कीमती, सबसे प्यारी। इसीलिए हम दूसरे की जान लेने और अपनी जान देने के पहले थोड़ा सोच ले।

एक नागरिक—तुम कायर हो !

दूसरा नागरिक—महामात्य, गालियों को रोकिए ; किसीको हक नहीं कि वह दूसरे को कायर कहे !

चारों ओर उत्तेजना का वातावरण—महामात्य हाथ के इशारे से उन्हें शान्त करते—

अम्बपाली :

महा० चेतक—नागरिको, आप धैर्य न लीये। इन्हें पूरी बात कहने दीजिए।
(पहले नागरिक से) आप जारी रखे—

पहला नागरिक—मैं कह रहा था, जो काम हम करने जा रहे हैं, उसपर जरा गौर से सोच ले। हम अपने गण पर, अपने संघ पर, अपनी वैशाली पर अपनेको बलिदान करने जा रहे हैं। वैशाली या वृजिसंघ क्या है, अगर वह एक आदर्श का प्रतीक नहीं हो। इस आदर्श के निर्माण के लिए हमारे पूर्वजों ने क्या-क्या नहीं किया? उसी आदर्श को देखकर भगवान बुद्ध ने हमें देवता कहा था। लेकिन, वह आदर्श आज कहाँ है? हम उस उज्ज्वल आदर्श को खोकर जमीन पर ढकेले गये देवता-ऐसे हो गये हैं। हमारे नागरिक एक-दूसरे की निन्दा करते हैं, एक-दूसरे से मर्म छिपाते हैं, एक-दूसरे की बुराई चाहते हैं, एक-दूसरे को कायर कहते हैं—भिखमंगा बताते हैं—

(कई ओर से आवाजे आती हैं) —‘यह झूठी बात है’, ‘बिल्कुल झूठ’, ‘नहीं-नहीं, सही बात’, ‘उस दिन तुमने मुझे भिखमंगा बताया’, ‘तुमने मुझे कायर कहा’, ‘वीर लड़ें, हम कायर क्यों लड़ें?’ ‘भिखमंगे क्यों लड़ें, जिन्हें धन बचाना है, लड़ें’, ‘तुम्हारी जवान कट जाय’, ‘तुम्हारी जिव्वा पर लानत!’

महा० चेतक—(ऊँची आवाज में) शान्त नागरिको, शान्त! (पहले नागरिक से) आपको जो कुछ कहना है, जल्दी कीजिए—

पहला नागरिक—भाइयो, मैं इस नाजूक मौके पर अब ज्यादा दबक नहीं लेना चाहता। सिर्फ एक बात कहूँगा। एक तरफ तो हमारी यह हालत, दूसरी ओर बुद्धमन को देखे। आप जानते हैं, मगध-सम्राट अजातशत्रु अब पुराना अजातशत्रु नहीं रह गया है। अब वह भगवान बुद्ध का अनुयायी है। विनरात गृद्धकूट की ओर उसका ध्यान लगा रहता है। वह प्राधा भिक्षु बन चुका है। मगध के प्राधे खून ने उससे ऊधम कराये, अब हमारा रक्त उसपर हावी है। उसके शरीर में जो वृज्जिरक्त है, वह उसे सुकर्म पर ले जा रहा है। फिर वह हम पर क्यों चढ़ाई करेगा? अगर की है, तो जरूर हमलोगों ने कुछ उत्तेजना बी है, उसे तंग किया है, लाचार किया है। इसलिए, हमें उसके खिलाफ फौज न भेजकर समझौते के लिए दूत भेजना चाहिए, उससे मुलह कर लेना चाहिए—(बोलकर हट जाता है)

एक नागरिक—बहुत ठीक, हम हिंसा से भी बच जायेंगे।

दूसरा नागरिक—तुम दोनों कायर हो, जनब्रोही, गणब्रोही, देशब्रोही!

फिर नागरिकों में आपस की तू तू-मैं मैं मच जाती है—हल्ला-गुल्ला मच जाता है—महामात्य बार-बार उन्हें शान्त करने की कोशिश कर रहे हैं—

अचानक लोग अम्बपाली को देखते हैं—अजीब है वेश उसका—शरीर पर जिरह-बस्तर—सिर के लहराते बाल के ऊपर शिरस्त्राण—पीठ पर ढाल, कमर से तलवार लटक रही—एक हाथ में बर्छा, जिसकी फली के नीचे वैशाली का झंडा लहरा रहा—

उसे इस रूप में देखते ही सब आश्चर्य-चकित रह जाते हैं—आपस का विवाद रुक जाता है, सब चुप हो जाते हैं—इस जमाव को वह आँख घुमाकर देखती है, फिर महामात्य की आज्ञा ले, ओजस्वी शब्दों में बोलती है—

अम्बपाली—वृज्जिसंघ के नागरिकों, वैशाली के सपूतों ! मेरे इस रूप को देखकर आप चकित हो रहे हैं । नारी का यह रूप नहीं, राजनर्तकी के भी अनुरूप नहीं ! आपका चकित होना उचित ही है । लेकिन, आप सोचिए तो कि मुझे यह रूप क्यों धारण करना पड़ा है ? क्यों उन हाथों में आज तलवार है, जिनमें कल तक बीणा थी ? क्यों उस मस्तक पर शिरस्त्राण है, जिसपर फूलों के गुच्छे लटकते थे ? जिस वक्षस्थल पर कल तक पारिजात की मालाएँ होती थीं, उस पर आज यह जिरह-बख्तर देखकर आप चकित न हों, यही आश्चर्य है । किन्तु, आप सोचिए तो, ऐसा क्यों हुआ ?

वह चुप हो जाती है—चारों तरफ सन्नाटा है—सब एक-दूसरे का मुँह देखते हैं—अम्बपाली फिर बोलती है—

नागरिकों, आप नहीं बोल रहे हैं । आप शायद नहीं सोच पा रहे हैं । या आप अपने पर शर्मिन्दा हो रहे हैं ? हाँ, यह शर्म की बात है, लज्जा की बात है कि जब दुश्मन हमारे द्वार पर पहुँच चुका है, जब उसकी तलवार हमारी गर्दन छू रही है, उसके तीर हमारी छाती में घुसने को है, हम यहाँ विबाध कर रहे हैं कि हम युद्ध करे या न करे, लड़ाई अच्छी चीज है या बुरी, इसमें हिंसा है या अहिंसा ? हम कितने पतित हो चले हैं और हमारा दुश्मन कितना भला है, इसकी नापतोल भी हम आज ही कर लेना चाहते हैं ! कैसी आत्मवंचना ! आत्महत्या का कैसा सुन्दर प्रयत्न !! कहा जाता है, अजातशत्रु आधा भिक्षु हो चुका है । क्या कहने है, अगर वह भिक्षु हो चुका, तो वह हम पर क्यों चढ़ दौड़ा है ? क्या भिक्षुओं की सेना तलवार लेकर चलती है ? गाँवों को जलाती है ? फसलों को रौंदती है और आवामी के खून से जमीन को सींचती है ?

(लोगों में सनसनी छा जाती है—चेहरों पर गुस्मे की झलक स्पष्ट हो जाती है—बाहे फड़कने लगती है—लोगों की इस परिवर्तित भावना को देख जैंगे गरम लोहे पर हथौड़े की चोट देती अम्बपाली ओजस्वी शब्दों में कहती है—

यह भी कहा गया है कि अब उसपर वृज्जियों का रक्त हावी है । नागरिकों, जिस दिन अजातशत्रु ने—जिसकी कोख से पैदा हुआ, जिसके दूध पर वह पला, उस वृज्जिकुमारी—महारानी चेल्लना को तड़प-तड़पकर मरने को लाचार किया, उसी दिन उसके शरीर का वृज्जिरक्त स्रव्य चुका ! पितृहन्ता, मातृहन्ता के शरीर में भी जो वृज्जिरक्त का प्रवाह देखते हैं, क्या वे वृज्जियों के रक्त का अपमान नहीं कर रहे हैं ? वृज्जियों का रक्त देवरक्त है, वह राक्षस के शरीर में रह नहीं सकता !

नागरिकों की आवाजे—अजातशत्रु राक्षस है ! वह पितृहन्ता है । हम उसे सबक सिखायेंगे । हम महारानी चेल्लना का बदला चुकायेंगे । आदि-आदि

महा० चेतक—शान्त ! शान्त ! देखि, आप श्रप ही धान कहें—

अम्बपाली :

अम्बपाली—फिर, यह कहा गया है, हमने आदर्श खो दिया ! जरूर खो दिया— जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने है । हमने यह नैतिक पतन ! लेकिन, सोचिए, ऐसा क्यों हुआ ? कुछ दिन पहले तो यह बात नहीं थी । इन कुछ दिनों में ही यह कौन-सा जादू हो गया ! कौन-सा जादू हुआ, किसने यह जादू किया ? जिसने भाई के बिल में घुसकर भाई का प्रेम वहाँ से हटाया, जिसने उस दिन अभिषेक-संगल-पुष्करिणी को खून से अपवित्र करवाया, वह कौन जादू है, वह कौन-सा जादूगर है ? (जिसने विरोध में भाषण किया, उनकी ओर लक्ष्य करती) बोलिए, इस संस्थागार के सामने, हिम्मत हो तो उसका नाम बताइए, या यह जिम्मेवारी आप अपने ऊपर लेते हैं ?

सब नागरिक उस विरोधी नागरिक की ओर देखने लगते हैं—जिन लोगों ने उसके सुर-मे-सुर मिलाया था, उसके गिर नीचे होने लगते हैं—खामोशी देख महामात्य बोलते हैं—

महा० चेतक—आयें, जादूगर चला गया, अब सिर्फ उसका जादू रह गया है, जो हमारे कुछ भोले नागरिकों के सिर चढ़कर बोल रहा है !

नागरिकों की आवाजें—‘वह कौन था ?’—‘यह क्या बात है ?’—‘उसका नाम बताइए ।’—‘हम उसे मजा चलायेंगे !’ आदि-आदि

अम्बपाली—मजा चलाएँगे, तो चलिए, रणभूमि में । वह रणभूमि में ही आपके मिलेगा । लेकिन, अब उसके हाथ में पोथी नहीं होगी, तलवार लेकर वह आपके सामने खड़ा होगा । उसने पीला कपड़ा फेंक दिया होगा, जिरह-बल्तर पहन लिया होगा उसने । उसके सिर के पोपले मुँह से मंत्र की बुदबुदाहट नहीं, अब आप राक्षसी चीत्कार सुनेंगे—

नागरिकों की आवाजें—‘आप वस्सकार की बात कह रही हैं ?’—‘क्या उसी दुष्ट की यह करामात है ?’—‘उफ मक्कार !’—‘उफ दगाबाज !’ आदि-आदि

अम्बपाली—हाँ, उसी दुष्ट की । देख लीजिए, वह आज आपके बीच नहीं । (चारों ओर नजर दौड़ाती है—ओर लोग भी देखते हैं) क्यों रहे ? उसने अपना काम किया और चलता बना । फसल बो चुका, अब गया है हँसिया लाने—हम फसल, उसकी हँसिया—हमारी गर्दन, उसकी तलवार !

चारों ओर से आवाजें आती हैं—‘हम ऐसा नहीं होने देंगे’—‘हम वैशाली पर अपनेको बलिदान कर देंगे’ आदि, फिर ‘वृजिसंघ की जय’, ‘वैशाली की जय’, ‘अम्बपाली की जय’ की ध्वनि-प्रतिध्वनि होने लगती हैं—लोगों की उमंग देख अम्बपाली कहती है—

नागरिकों, ठीक, वैशाली की जय, वृजिसंघ की जय ! ये जयनिनाद हमारे हार्दिक उल्लास और मानसिक निर्णय के सूचक हैं, इसलिए वांछनीय है, बंदनीय है । लेकिन, याद रखिए, जब दुश्मन हमारे सामने होता है, जब ‘हम या वे’ के फैसले का वक्त पहुँचता है, तो सिर्फ हार्दिक उल्लास या मानसिक निर्णय उपयुक्त नहीं होता । उस उल्लास और निर्णय को कार्यरूप देने पर ही उनकी साथ्यकता और हमारी सफलता निर्भर करती है ! कार्यशक्ति से हीन जयनाद आत्मप्रबंधना है—इसलिए चलिए, रणभूमि

की ओर, बढ़िए जयभूमि की ओर । आइए, मैं आपके मस्तक पर विजय-तिलक लगाऊँ ।
(मुडकर) चयनिके, रौली-चंदन का थाल ला—

नागरिकों का ठट्टा उसकी ओर बढ़ता है—सबके सिर पर वह रौली-चंदन लगाती जाती है—उधर संघागार के मुड़ेरे से वीरवाणी में वृज्जियों का राष्ट्रगीत गाया जा रहा है—

जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो,
हिमगिरि - शृङ्ग - सदृश सिर उन्नत,
गग - तरंग - सदृश मन निर्मल,
हम निर्मल, निर्भय,
हम उन्नत, गतिमय,
पावन हैं आदर्श हमारे, जीवन यातमय हो,
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो !

जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो,
हम स्वाधीन, स्वतंत्र रहेंगे
हम न किसीका धोस महेंगे,
हम अजेय, अनिवार,
हम रिपु-हित संहार,
विजय हमारी ओर, शत्रु की ओर प्रलय-लय हो,
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो !

४

युद्धभूमि का एक अंचल—यहाँ से युद्धभूमि में होनेवाला कोलाहल, जयनाद, चीख-पुकार आदि के शब्द सुनाई पड़ते हैं—युद्धभूमि की एक झलक भी यहाँ से दीख पड़ती है—

घोड़े पर अम्बपाली आती है—वही वीर वेश—चेहरे पर पसीने की बूंदें, गर्दगुबार के दाग—शरीर पर खून के छीटे—घोड़े को खड़ा कर युद्धभूमि की ओर देखती है—

दूसरी ओर से एक और घोड़ा आता है—उसपर वैशाली के महामात्य चेतक है—बुढ़ापा ने मानों वीरता का वाना पहन रखा है—अम्बपाली को देखते ही अपना घोना खड़ा कर देने और कहते हैं—

अम्बपाली :

महा० चेतक—आर्ये, सर्वनाश ! वृजिसंघ की स्वातंत्र्य-पताका गिर गई !
(उनका गला भर आता है)

अम्बपाली—(साश्चर्य) यह क्या हुआ महामात्य ?

महा० चेतक—हुआ वही, जो होना था । हमने अपने फटे कपड़े को सोने की कोशिश की—ऊपर से वह सिला भी दीखता था ; लेकिन एक तनाव ने ही उसके तार-तार उधेड़ दिये । जमीन की दरार भरती है, राष्ट्र की दरार तुरत नहीं भरती आर्ये ! अजातशत्रु की सेना नगर में घुस गई !

अम्बपाली—ऐ, नगर में घुस गई ? (महामात्य के चेहरे को एकटक देखती है)

महा० चेतक—हाँ, घुस गई ! अभी खबर मिली है, वह उत्तर-द्वार से नगर में घुसी आ रही है । दो दीवारे पार कर चुकी, तीसरी कर रही होगी !

अम्बपाली—(आश्चर्य की अधिकता में चिल्ला पड़ती है) उत्तर-द्वार से ?

महा० चेतक—यही तो तमाशा है, आर्ये ! दक्षिण से आनेवाली सेना उत्तर-द्वार से प्रवेश कर रही है ।

अम्बपाली—आह ! हमे धोखा हुआ !

महा० चेतक—बिना विभीषण के सोने की लंका नहीं जल सकती थी, भद्रे ! त्रेता की गलती फिर दुहराई गई और न जाने कितनी बार कहाँ-कहाँ दुहराई जायगी ।

अम्बपाली—(अपना सारा साहस समेटकर) महामात्य, हम चले उस ओर, उनके प्रवाह को रोके ।

महा० चेतक—जब बाँध टूट जाता है, तब, भद्रे, प्रवाह के पानी को कोई नहीं रोक सकता । जो ऐसी कोशिश करेगा, वह डूबकर रहेगा । अब हम या तो इस व्यर्थ प्रयत्न में डूब मरे या चतुर किसान की तरह जो कुछ बच सके, उसे बचाये और अगली खेती के लिए सामान जुटायें !

अम्बपाली—अगली खेती ?

महा० चेतक—हाँ, अगली खेती । फसल की तरह राष्ट्र की जड़ भी जमीन के नीचे होती है । एक फसल बर्बाद हो जाय, दूसरी फसल लहरायगी । एक पुष्ट गुलाम बन जाय, दूसरी पुष्ट आजाद होकर रहेगी । दूसरी फसल पहली फसल की सड़ाई से खाद पाती है, पहली से भी अच्छी होती है । गुलाम राष्ट्र जब उभरता है, वह उन्नति की उस चोटी पर छलाँग मारकर चढ़ जाता है, जिसके पहली पुष्ट के लोग सपने ही देखते थे । लेकिन शर्त एक है !

अम्बपाली—शर्त क्या है, आर्य ?

महा० चेतक—उस राष्ट्र के लोग नैतिक बल को खो न दें । जो जन-नायक होते हैं, उनका यह काम है कि ऐसे मौकों पर अपने व्यक्तिगत उदाहरण से जनता के नैतिक साहस को ऊँची सतह पर रखें—वह न दबे, फिर कोई नहीं दबेगा ! साहस सक्रामक चीज है भद्रे ! एक का साहस हजारों-लाखों में साहस भरता है । शहादत का खून ही

वह खाद है, जिसे पाकर राष्ट्र की बेल बढ़ती, फँलती और फूलती-फलती है ! हमारा साहस उन्हें भी ऊँचे उठने को प्रेरित करेगा जो आज पतित, अधम हो चुके हैं ।

अम्बपाली—(घृणा से मुँह सिकोड़ती) वे पतित, वे नीच, वे नराधम ! वैशाली उन्हें कभी नहीं क्षमा कर सकती, महामात्य !

महा० चेतक—वैशाली के प्रतिशोध लेने के पहले ही अपने हृदय का पश्चात्ताप ही उन्हें या तो जला डालेगा, या कुंदन बना देगा । गणतंत्र और राजतंत्र की प्रजा मे बहुत अन्तर है, आर्ये ! राजतन्त्र की प्रजा कभी कह सकती है—‘कोउ नृप होहि हमहि का हानी ।’ लेकिन गणतंत्र की प्रजा पर ज्योंही दूसरों का शासन लादा जायगा, उसका हृदय विद्रोह कर उठेगा । वैशाली की प्रजा को गुलामी में रखना असम्भव है, भद्रे !

अम्बपाली—(कातर स्वर में) आज तो हम गुलाम हो चुके, महामात्य ! !

महा० चेतक—यह तो अजातशत्रु को कल मालूम होगा । जो अपने बाप को कैद कर सका, कल देखूंगा, वह चेतक को कैसे कैद कर लेता है ! (उनका चेहरा एक अलौकिक ज्योति से दिप उठता है) कैद होने के पहले कैदी खुद अपनेको कैद कर लेता है, आर्ये ! जिसकी तबीयत आजाद है, उसे कोई कैद नहीं कर सकता । अगर, किसी ने जबरदस्ती की भी, तो पेट में गये कच्चे अन्न की तरह फिर उसे उगलना पड़ेगा—वह उसे पचा नहीं सकता । अगर यह बात नहीं होती, तो कुछ बलशाली मानव सारे संसार को गुलाम बनाकर रखते ।

अम्बपाली—वैशाली के महामात्य के उपयुक्त ही ये बातें हैं । मैं तो इसकी कल्पना से ही घबरा रही हूँ !

महा० चेतक—जो घबराता है, उसके सामने सबसे पहले भूत आता है, आर्ये !

युद्धभूमि की चीख-पुकार बढ़ती और नजदीक आती-सी मालूम पड़ती है—बूढ़े महामात्य ‘आर्ये, वैशाली की शान न खोना’ कहकर घोड़े को फँदाते चल देते हैं—

अम्बपाली भय-चकित दृष्टि से महामात्य की ओर देख रही है कि एक तीर उसकी ओर सनसनाता आता दिखाई पड़ता है—एक दूसरा घुड़सवार अपने घोड़े को उछालकर भट वहाँ पहुँचता है और उसके घोड़े के धक्के से अम्बपाली का घोड़ा जरा हट जाता है—तीर उस आगन्तुक घुड़सवार के गले में लगता है—वह घोड़े से लटक जाता है—

अम्बपाली के मुँह से चीख निकलती है—वह उस घुड़सवार को देखने की कोशिश करती है कि तब तक कई घुड़सवार आ जाते हैं—आपस में तलवारें चलने लगती हैं—सब तितर-बितर हो जाते हैं—

५

अम्बपाली का वसंतोद्यान—संध्या का समय—

वगीचे के बेंगले के बरामदे से सटा एक ऊँचा मंच—मंच पर सजी-सजाई फर्श—उस पर बैठी अम्बपाली आईना सामने रखे शृङ्गार कर रही है—

अम्बपाली :

मंच के आगे उद्यान का जो हिस्सा है, उसमें बेला, मोतिया, जूही आदि की पंक्तियाँ कलियों से लदी—बीच में एक छोटा-सा नकली हौज जिसमें पालतू हंस का जोड़ा तैर रहा—

अम्बपाली की बगल में चयनिका खड़ी है—चयनिका कभी आसमान को देखती है, कभी अम्बपाली के चेहरे को—वह आश्चर्य और विषाद की पुतली बनी हुई है—अम्बपाली के चेहरे को पढ़ना उसके लिए मुश्किल हो रहा है—वह ठीक संध्या का प्रतिरूप है, जिसमें दिन-रात, हर्ष-विषाद का निर्णय करना कठिन हो रहा—

चयनिका की ओर देखकर अम्बपाली मुस्कुराती है—फिर उससे पूछती है—

अम्बपाली—चुप्री, देख तो, यह मेरा शृंगार कैसा उतरा ?

चयनिका—(नहीं बोलती है, सिर नीचा कर लेती है)

अम्बपाली—बोल-बोल, शृङ्गार कैसा उतरा ?

चयनिका—(फिर भी चुप है, सिर और नीचा कर लेती है)

अम्बपाली—(प्यार-भरे गुस्से में) नहीं बोलती ? तुझे बताना होगा चयनिके, कि आज का मेरा शृङ्गार कैसा उतरा ?

चयनिका—मैं कुछ नहीं समझ पाती, भद्रे !

अम्बपाली—तू कुछ नहीं समझ पाती और न समझ सकेगी। अम्बपाली की बातें समझ जाना आसान भी तो नहीं हैं, चुप्री !

चयनिका—हाँ, आर्यो !

अम्बपाली—तू यही न सोच रही है कि कहाँ आज सारी वैशाली में मातम है, रुदन है, हाहाकार है, और कहाँ मेरा यह शृङ्गार, यह प्रसाधन, यह उल्लास, यह हास ! क्यों ?

चयनिका—हाँ, आर्यो !

अम्बपाली—लेकिन सोच, वैशाली में यह मातम क्यों है ? क्योंकि वह हार चुकी है। हारा आदमी अगर मातम न मनाये, गम में पड़ा आदमी न रोये, तो उसकी छाती फट जाय, धुकधुकी बंद हो जाय, वह मर जाय। वैशाली मरना नहीं चाहती है, इसलिए मातम मनाती है। लेकिन.....(वह चुप हो जाती है)

चयनिका—‘लेकिन’ क्या भद्रे ? (उसकी आँखों में भय की छाया)

अम्बपाली—तूने सुना है, जब स्त्रियाँ सती होने जाती हैं, तब शृङ्गार कर लेती हैं। जिसने चिता से लिपटना तय कर लिया, वह अन्तिम साज-सज्जा से अपनेको क्यों वंचित रखे ? जब घरवाले छाती पीटते होते हैं, वह हँसती हैं, मुस्कुराती हैं, शृङ्गार करती हैं। लेकिन घरवाले रो-पीटकर भी श्मशान से जिन्दा लौटते हैं, वह हँसकर भी अपनेको ज्योति में विलीन कर बेती हैं !

चयनिका—भद्रे, भद्रे, यह आप क्या कह रही हैं ? (उसकी आँखें छलछला उठती हैं)

अम्बपाली—बहुत ही सही कह रही हूँ। अम्बपाली ने किसी एक व्यक्ति पर नहीं, वैशाली पर अपनेको उत्सर्ग किया था। आज जीती-जागती वैशाली मुर्दा लाश-सी

पड़ी है। इसे कोई नहीं बचा सका। अब अम्बपाली ने तय किया है, या तो इस लाश में वह जान फूँकेगी, या इसीके साथ जल मरेगी !

चयनिका—आर्यो ! आर्यो ! (तलहथी से मुँह ढककर रोने लगती है)

अम्बपाली—कातर मत बन, चयनिके ! अपनेको अम्बपाली की योग्य अनुचरी सिद्ध कर ! देख, मेरा शृङ्गार अच्छा बना कि नहीं ? इच्छा होती है, जितने भी शृङ्गार और प्रसाधन के सामान हैं, सब आज लाव लूँ, ओढ़ लूँ ! (कुछ रुककर) जल्दी कर, मगधराज अजातशत्रु अभी यहाँ पधारनेवाले हैं ।

चयनिका—मगधराज ! अजातशत्रु !

अम्बपाली—हाँ। महामात्य ने कहा था, जो डरता है, उसके नजदीक सबसे पहले भूत आता है ! वैशाली में पहली मेहरबानी उनकी मुभी पर हुई है। उन्होंने खबर भेजी है, आज अकेले-अकेले यहाँ पधारेंगे ! मगधपति का स्वागत भी तो साधारण साज-सज्जा से नहीं होना चाहिए। वह भी तो देख ले कि इस अलौकिक नगरी की राजनतंकी कैसी है ?

चयनिका—(कुछ घृणा, कुछ क्रोध से) मगधपति के स्वागत के लिए ? भद्रे

अम्बपाली—(हँसकर) एकती क्यों है, बोल। आज का सब कहा-सुना माफ !

चयनिका—(चुपचाप अम्बपाली का चेहरा घूर रही है)

अम्बपाली—हाँ रे, मगधपति के स्वागत के लिए ! राजनतंकी अपने स्वागत से किसी प्रागत को कैसे बंचित कर सकती है ? हाँ, स्वागत-स्वागत में फर्क है। दीप-शिखा भी तो पतंग का स्वागत करती है। और उसके स्वागत के बो ही नतीजे होते हैं—या तो पतंग जलेगा, या दीपक बुझेगा। जिस दीपक ने बुझना तय कर लिया, उसकी शिखा जितनी भी तेज रहे, उतना ही अच्छा !

चयनिका—(भरीई आवाज में) फिर यह आप क्या कह रही है, भद्रे ?

अम्बपाली—चयनिके, अम्बपाली तय कर चुकी है, जिसे वैशाली नहीं हरा सकी, उसे अम्बपाली हरायगी। हरायगी, या देख (अँगूठी दिखाती है) इस अमृत को चूसकर अमर बन जायगी। जो पताका हमारे वीरों ने रणभूमि में गिरा दी, आज अजातशत्रु देखेगा, इस मेरी रंगभूमि में वह कितनी ऊँची लहराती है !

चयनिका—यह अजीब द्वन्द्वमयी बातें हैं, आर्यो !

अम्बपाली—द्वन्द्वात्मक परिस्थिति में बातें भी द्वन्द्वात्मक ही हो सकती हैं। हम हराये जा चुके हैं, तो भी विजय की आकांक्षा रखते हैं। हम गिराये जा चुके हैं, तो भी उठने का अरमान हमसे हटा नहीं—इस मनहूस संध्या में हम सुनहली भोर का सपना देख रहे हैं ! इस द्वन्द्वमयी परिस्थिति में सीधी-सादी बातें क्या हो सकती हैं, पगली !

वह हाथ बढ़ाकर चयनिका की उँगली पकड़ती और उसे खींचकर ठुड्डी पकड़ चुमकाती है, उसके मस्तक पर चुम्बन देती है—

अम्बपाली :

धुंधलका हो रहा है—एक परिचारिका वहाँ आकर दीप जला जाती है—एक ऊँचे चिरागदान पर कितनी ही दीप-शिखाएँ जगमगा उठती हैं—उनके प्रकाश में अम्बपाली का सौन्दर्य और चमक उठता है—

दूसरी परिचारिका इसी समय एक ग्रैगूठी लाकर अम्बपाली को देती है—ग्रैगूठी पर वह नाम पढ़ती है और कहती है, “जा उन्हें बुला ला ।”—

अजातशत्रु आता है—साधारण नागरिक-सा है वेश उसका—अम्बपाली आगे बढ़कर स्वागत करती और मंच पर बिठलाती है—

“चयनिके ! तू भी चली जा, यहाँ कोई न आवे”—कहकर बड़ी ही गम्भीर मुद्रा में अजातशत्रु से पूछती है—

अम्बपाली—मगधपति की आज्ञा ?

अजातशत्रु—मगधपति मत कहो, राजनर्तकी ! मैं मगधपति की हँसियत से यहाँ नहीं आया । मगधपति इस वेश-भूषा में नहीं आया करते ।

अम्बपाली—क्षमा करें, मुझसे गलती हुई । मगधपति तो धनुष के टंकार और तलवारों की भँकार के साथ आया करते हैं ।

अजातशत्रु—मगध को अपने धनुष और तलवार पर कम नाज नहीं है, राजनर्तकी ! तुम्हारे व्यंग्य में भी सचाई है ।

अम्बपाली—सिर्फ एक बात कहना मैं भूल गई थी ; क्षमा कीजिए तो निवेदन करूँ ।

अजातशत्रु—तुम्हारे लिए हमेशा क्षमा है !

अम्बपाली—क्योंकि मैं नारी हूँ और सुन्दरी भी ?

अजातशत्रु—तुम सुन्दरी हो, इसमें भी सचाई है ।

अम्बपाली—(ताने के स्वर में) और इसमें भी सचाई है कि मगध को धनुष और तलवार के साथ ही अपने महामंत्री वस्सकार पर भी कम नाज नहीं ।

अजातशत्रु—(मुस्कराते हुए) तुम वस्सकार पर नाराज हो लो, राजनर्तकी, लेकिन मंत्री वही है, जो विजय का पथ प्रशस्त करे ।

अम्बपाली—चाहे जिस घृणित उपाय से हो ?

अजातशत्रु—विजय का पथ हमेशा ही कीचड़ से भरा और रक्त से सना होता है । जो गंदगी और खून से डरे, उसे सिर से मुकुट उतारकर हाथ में भिक्षापात्र लेना चाहिए ।

अम्बपाली—(जैसे निशाना लेकर) भगवान बुद्ध ने मगधपति को यही शिक्षा दी थी ! क्यों ?

अजातशत्रु—भगवान ने कुछ दूसरी ही शिक्षा दी थी । (मुस्कराते हुए) किन्तु, एक नन्हों-सी चीज ने सब बंटाड़ार कर दिया, राजनर्तकी ! देखोगी वह चीज ?

अम्बपाली—कौसी चीज ?

अजातशत्रु—(हाथी-दाँत पर बनी अम्बपाली की तस्वीर निकालकर उसके हाथ में देते हुए) यही है वह चीज !

अम्बपाली—(आश्चर्यचकित) ऐ, यह मैं ? मेरी....

अजातशत्रु—हाँ, तुम्हारी इस छोटी-सी तस्वीर ने ही फिर एक बार पीला कपड़ा उतार फेंकने को लाचार किया, एक बार फिर गंगाजल के धोये हाथों को खून से धोने को बाध्य किया !

अम्बपाली—(भीचक बनी) मगधपति !

अजातशत्रु—राजनर्तकी, मगधपति ने जिन्दगी के इतने चढ़ाव-उतार देखे हैं कि उसने तय कर दिया था—शेष जीवन वह गूढ़-कूट पर ध्यान लगाते राजगृह में बिता डालेगा ; या राजपाट की भँभटों को दूर फेंक बोधिवृक्ष की छाया में शान्ति-सुख प्राप्त करते सदा के लिए आँख मूंद लेगा । किन्तु, उसके सारे मंसूबे हवा हो गये—उसे छल की शरण लेनी पड़ी, बल का प्रयोग करना पड़ा । किसके चलते ? क्यों ? इसी छोटी-सी तस्वीर ने.... (मुस्कराता है)

अम्बपाली—तो आप राज्य के लिए वंशाली नहीं आये, सौन्दर्य के लिए वंशाली आये हैं ।

अजातशत्रु—तुमने बिल्कुल ठीक कहा ।

अम्बपाली—सौन्दर्य, जो राज्य से भी क्षणिक है !

अजातशत्रु—सौन्दर्य, जो राज्य से भी अधिक प्रलोभक, मोहक और आकर्षक है । हर दिव्य वस्तु क्षणिक होती है, राजनर्तकी ! फूल की मुस्कान, चपला की चनक, इन्द्रधनु की रंगीनियाँ और ओस की चमचमाहट—सब क्षणिक हैं ! क्षणिकता दिव्यता की अनुचरी ही नहीं, सहचरी है !

अम्बपाली—और, मानवता की महत्ता इसीमें है कि क्षणिक के पीछे दौड़ा जाय ?

अजातशत्रु—क्षणिक के पीछे नहीं, दिव्य के पीछे । हर अच्छी चीज के पीछे उसका बुरा पहलू होता है, राजनर्तकी । जन्म के पीछे मरण है, उल्लास के पीछे विपाद, उत्सव के पीछे मातम । लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि जिन्दगी और जशन—जीवन और उत्सव—को भूलकर हम हमेशा शोक-सागर में गोते लगाते रहे—मातम मनाते रहे !

अम्बपाली—(वृणायुक्त व्यंग्य में) और इस जिन्दगी और जशन के लिए हजारों श्रावमियों का खून बहाये, हजारों माताओं को निपूती बनाये, हजारों युवतियों का सुहाग-सिन्दूर धोये और हजारों मासूम बच्चों की जिन्दगी को आँसुओं में डुबोये !

अजातशत्रु—हाँ, हाँ । राजनर्तकी, इन भावुकता की बातों से तुम अजातशत्रु के दिल को बहला नहीं सकती—बल्कि ऐसा करके तुम उसके दिल में सोई उस राक्षसी को ज़ुबेदकर जगाती हो, जिसे वह मुश्किल से सुला पाता है !

अम्बपाली :

वह अचानक उठकर खड़ा हो जाता है—इधर-उधर टहलने लगता है—
आसमान की ओर बार-बार देखता है—अम्बपाली कुछ देर तक उसकी भावभंगी देखती है—फिर नजदीक जाकर कहती है—

अम्बपाली—मगधपति, आसन ग्रहण करे ।

अजातशत्रु—नहीं, मुझसे बैठा नहीं जायगा, सुन्दरी !

अम्बपाली—‘सुन्दरी’ कहकर मेरा अपमान न कीजिए ।

अजातशत्रु—हाँ, हाँ, समझा, समझा ! (हँसकर) सुन्दरी का आग्रह कोई कैसे टाल सकता है ? अच्छा, आग्रो बैठे ।

अजातशत्रु बैठ जाता है—किन्तु अम्बपाली खड़ी ही रहती है—अजातशत्रु कहता है
अजातशत्रु—बैठो, सुन्दरी !

अम्बपाली—क्या नारी सिर्फ सुन्दरी ही होती है ?

अजातशत्रु—हाँ, जो सुन्दरी नहीं है, वह नारी नहीं है । ठीक उसी तरह कि जो वीर नहीं है, वह मर्द नहीं है ।

अम्बपाली—नारी वीर भी हो सकती है !

अजातशत्रु—और मर्द सुन्दर भी हो सकते हैं । लेकिन इन दोनों को प्राकृतिक गड़बड़भाला ही समझो, सुन्दरी !

अम्बपाली आँखें गड़ाकर अजातशत्रु के चेहरे को देखती है—उसके शीतला के दाग से भरे चेहरे पर अजीब कूरता दिखाई पड़ती है—अम्बपाली को यों घूरते देख वह हँसकर बोलता है—

अजातशत्रु—क्यों ? मैं क्रूर हूँ, यही न देख रही हो ?

अम्बपाली—इसके पीछे की चीज भी ।

अजातशत्रु—तुम मुखमुद्रा पढ़ सकती हो ?

अम्बपाली—आप शस्त्र चला सकते हैं ?

अजातशत्रु—आहा ! (जोरो से हँसकर) तुम—जैसी राजनर्तकी पाकर कोई भी राजसभा धन्य हो सकती है ।

अम्बपाली—(उसका अभिप्राय भाँपकर) आप यों मेरा अपमान नहीं कर सकते ।

अजातशत्रु—मैं तो तुम्हें सम्मान देने आया हूँ । वैशाली-विजेता आज वहाँ की राजनर्तकी अम्बपाली से...

अम्बपाली—(बीच ही में बात काटकर) प्रणय की भीख माँगने आया है ! क्यों, यही न कहना चाहते थे ?

अजातशत्रु—बिल्कुल ठीक ! उफ, तुम कितनी बुद्धिमती हो, सुन्दरी !

अम्बपाली—अम्बपाली प्रशंसा की भूखी नहीं है, मगधपति । और वह प्रशंसा वैशाली-विजेता के मुँह से । ऐसी प्रशंसा को वह तानत समझती है ; घोंसले को उजाड़ने वाले बहेलिये से चिड़िया चुमकार सुनना पसंद नहीं करती ।

अजातशत्रु—हाँ, पहले पंख फटफटाती है, चंगुल और चोच चलाती है; लेकिन पीछे पालतू बनकर हाथ पर खेलती है, कंधे पर फुदकती है और सिर पर घोंसला बनाती है। क्यों? (अजीब उपेक्षाभाव से हँसता है)

अम्बपाली—(तमककर) कोई ऐसी चिड़िया भी हो सकती है, जो पंख पटककर मर जाना पसंद करेगी, लेकिन बहेलिये का अहसान न लेगी।

अजातशत्रु—ऐसी चिड़िया आज तक नहीं देखी गई।

अम्बपाली—आदमी सिर्फ चिड़िया नहीं है।

अजातशत्रु—मगधपति साधारण आदमी नहीं है।

अम्बपाली—अम्बपाली भी साधारण नारी नहीं है।

अजातशत्रु—तुम क्या बोल रही हो, सुन्दरी?

अम्बपाली—आप क्या चाह रहे हैं मगधपति?

अजातशत्रु—मैं क्या चाहता हूँ, इसे कहने की जरूरत रह गई? तो मुनो—(दर्प से) अम्बपाली वैशाली-विजेता की राजनर्तकी बनेगी, उसे राजगृह चलने का निमंत्रण देने आया हूँ।

अम्बपाली—और, अगर वह नहीं जाय?

अजातशत्रु—अजातशत्रु अगर-मगर नहीं जानता।

अम्बपाली—उन्हें जानने को लाचार होना पड़ेगा।

अजातशत्रु—(आवेश में) क्या कहा?

अम्बपाली—(लापरवाही में) मैंने कहा, मगधपति को सोचना पड़ेगा कि अम्बपाली अगर मगध जाने को राजी न हुई, तो वह क्या करेगी?

अजातशत्रु—तुम नहीं जाती? (भवे टेढ़ी करता है)

अम्बपाली—जरा अपनी भवे सीधी कीजिए, मगधपति। यह हम नारियों का ही शृङ्गार है।

अजातशत्रु—(आगबबूला होकर) सम्हलकर बोलो राजनर्तकी, तुम किसके सामने शोल रही हो!

अम्बपाली—उसके सामने, जो मुझसे प्रणय-भिक्षा माँगने आया है। भिखारी को घमंड नहीं शोभता!

अजातशत्रु फिर उचककर खड़ा हो जाता है—अजीब उसकी मुखमुद्रा हो रही है—वह बेचनी से मच पर टहलने लगता है—कुछ देर तक अम्बपाली चुपचाप खड़ी रहती है—फिर विनम्रता के शब्दों में कहती है—

अम्बपाली—मगधपति!

अजातशत्रु—(!) जवाब नहीं देता, टहलता रहता है)

अम्बपाली—मगधपति से मेरा निवेदन है, आसन ग्रहण करे।

अजातशत्रु—(स्ककर, उसके चेहरे पर आँखें गड़ाकर) सुन्दरी, तुम्हें याद रखना चाहिए कि वैशाली-विजेता से बातें कर रही हो!

अम्बपाली :

अम्बपाली—वैशाली-विजेता पर भी जिन्होंने विजय प्राप्त की थी, उनसे भी अम्बपाली ने ऐसी ही बातें की थीं।

अजातशत्रु—(चौककर) कौन है, जिसने मुझपर विजय प्राप्त की थी ? अजातशत्रु अजय है, राजनर्तकी !

अम्बपाली—आह ! आदमी अभिमान में अपने-आपको इतना भूल जाता है !

अजातशत्रु—(आँखें गुरेरना हैं)

अम्बपाली—मेरा मतलब भगवान बुद्ध ने था, मगधपति !

अजातशत्रु—(कुछ ठंडा पड़ते हुए) ओहो, अय्य समझा ! हाँ, सुना था, भगवान बुद्ध तुम्हारे आश्रकानन में ठहरे थे। उनसे तुम्हारी बातें हुई थीं ?

अम्बपाली—सिर्फ एक संध्या को नहीं, सात दिन की सात संध्याएँ उनसे बातें करने में मेरी गुजरतीं।

अजातशत्रु—फिर क्या हुआ ?

अम्बपाली—वही, जो दो समान-बलशाली व्यक्तियों की जोर-आजमाई के बाद होता है।

अजातशत्रु—(ग्राश्चर्य) समान-बलशाली ?

अम्बपाली—जी, हाँ। बल सिर्फ तलवार और धनुष में नहीं है, मगधपति। कुछ ऐसी ताकतें भी हैं जिनके सामने तलवारे मोम की तरह गल जाती हैं और धनुष तिनके की तरह टूट जाते हैं। क्या आप भगवान बुद्ध के निकट धनुष और तलवार लेकर गये थे ?

अजातशत्रु—(कुछ बोझता नहीं, सोचता है)

अम्बपाली—(मुस्कुराती हुई) और अम्बपाली के पास भी आप तलवार और धनुष लेकर नहीं आ सके।

अजातशत्रु—तुम इस भ्रम में न रहो कि मैं निःशस्त्र हूँ।

अम्बपाली—भगवान बुद्ध ने भी यह कभी न सोचा होगा कि मगधपति साधनहीन होने के कारण उनके पास निःशस्त्र गये थे।

अजातशत्रु—तुम अजीब नारी हो, अम्बपाली।

अम्बपाली—भगवान बुद्ध ने भी यही कहा था।

अजातशत्रु—उन्होंने और क्या कहा था ?

अम्बपाली—उनसे मेरी बातें अभी रह गई हैं—वह फिर वैशाली पधारेंगे।

अजातशत्रु—अम्बपाली, राजगृह चलो। वहीं गृद्धकूट पर भगवान के दर्शन करना।

अम्बपाली—मगधपति, अपनेको धोखे में मत रखिए। आप मुझे गृद्धकूट पर भगवान के दर्शन कराने के लिए आमन्त्रित करने नहीं आये हैं। भगवान और गृद्धकूट का दिव्य संदेश आपने सुना होता, जो आप यहाँ इस रूप में आते ही नहीं। यहाँ पर आपको बोधिवृक्ष की छाया नहीं, मार की आँगी पड़ा ले आई है। लेकिन मोगिए, सघ्राट,

जिसकी एक छोटी-सी तस्वीर ने आपके शरीर से पीला वस्त्र उतरवाया, नर-संहार पर उतारू कराया, उसका वहाँ सशरीर जाना आपके, राजगृह के और मगध के लिए, क्या मगल की बात हो सकती है ?

अम्बपाली की यह बात सुन वह थोड़ी देर असमंजस में पड़ जाता है। लेकिन, फिर जैसे सम्मेलन कर बोलता है

अजातशत्रु—मैं अकेला लौट नहीं सकता । (उसकी आवाज भर्राई हुई है)

अम्बपाली—सभी यही कहते हैं, सभी यही चाहते हैं, लेकिन, एक दिन सभीको अकेले लौटना होता है, मगधरति । यही होता आया है, यही होता रहेगा । हाँ, अगर हमने सही मार्ग पकड़ा, तो एक दिन हम सभी एक साथ होंगे—अनन्त काल तक के लिए । सवाल सिर्फ क्षणिक और अनन्त के बीच चुनाव का है, सम्राट !

अजातशत्रु चुप हो जाता है—धीरे-धीरे टहलता है—किन्तु, अब उसके चेहरे पर उत्तेजना या रोष की भयानकता नहीं, विपाद और पराजय की भावना है—वह अचानक जैसे कुछ निर्णय कर लेता है और कहता है—

अजातशत्रु—अम्बपाली, तुमने मुझे पराजित किया, मैं आज ही वापस जा रहा हूँ !

अम्बपाली—वैशाली-विजेता अम्बपाली को यह श्रेय दे रहे हैं, यह उनकी कृपा है !

अजातशत्रु—अजातशत्रु के हृदय में दया, ममता, कृपा, कृतज्ञता आदि कोमल भावनाएँ नहीं हैं, राजनर्तकी । यह सिर्फ जय जानता है । और अपनी पराजय को जय मानने की क्षुद्रता इसमें नहीं है । लेकिन, याद रखना, अजातशत्रु पराजय नहीं बर्दाश्त कर सकता । मुझे वैशाली-विजय को फिर आना पड़ेगा—

अम्बपाली—आइएगा, पर अब पहले महामंत्री वस्सकार को नहीं भेजिएगा, सम्राट !

अजातशत्रु—अब उसकी जरूरत नहीं रह गई, अम्बपाली । वैशाली-विजय का पथ तो प्रशस्त हो चुका है !

वह भाटकर, नेजी गे, बड़ा गे चल पड़ता है—अम्बपाली उसकी पीठ को एकटक देखती रह जाती है—उमके मुँह में शब्द नहीं निकलने, लेकिन उसकी आँखें पुकार-पुकारकर कह रही हैं, यह अजीब पुरुष है !

चौथा अङ्क

१

रात का मन्नाटे का आलम—

वैशाली का एक प्रान्तर—ब्रांस का भोपड़ा, जिनके आगे बाँस में ही घिरा एक आँगन—भोपड़े के बरामदे पर एक चिराग टिमटिम कर रहा—भोपड़े के भीतर भी रोशनी—

भोपड़े के भीतर, दरवाजे के सामने, एक खाट पर अरुणध्वज पड़ा है—समूचा शरीर ढँका, सिर्फ सिर उधार—बाल बिखरे, चेहरा मूखा, गाल फुचका—नाक कुछ असाधारण तौर से उभड़ आई—धँसी आँखें बन्द—

जिस दिन वैशाली में मगध सेना घुसी, यह घायल हुआ—जो तीर अम्बपाली की ओर आ रहा था, इसीने अपने ऊपर ले लिया था—

जल्म बढ़ता ही गया—रात-दिन बुखार में रहता है—मधूलिका की लाख कोशिश करने पर भी हालत नहीं सुधरी—आज उसकी हालत सब दिनों से खराब है—

उसके सिरहाने मधूलिका बैठी, अपने हाथ उसके बालों में सहला रही है—उसके चेहरे से कसूटा टपकी पड़ती है—कई दिन के उपवास और अनिद्रा ने चेहरे पर स्याही-सी पोत दी है—

कभी-कभी अरुण की आँखें खुलती हैं—वह छत की ओर देखता है, फिर मधूलिका की ओर देखता है—रह-रह कर हल्की-सी ग्राह उसके गले से निकलती है और उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं—

उसकी आँखें बन्द होते ही मधूलिका की आँखों से बड़े-बड़े मोती के दान-से आँसू टपक पड़ते हैं—किन्तु, वह तुरत सम्भल जाती है, जिसमें अरुण आँखें खोले, तो उसे आँसू नहीं दीख पड़े—चिकित्सक कह गये हैं, जरा-सा मानसिक धक्का इसकी बिगड़ी हालत को और खराब कर सकती है—

एक बार अरुण आँखें खोलते ही कहता है—“मधु, पानी”—मधूलिका भट खाट की बगल में रखी मुराही से कटोरे में पानी ढालकर उसे पिलाती है—पानी पीने के बाद अरुण कहता है—

अरुणध्वज—मधु, अब रात कितनी है ?

मधूलिका—अभी तीसरा पहरा जाग दे गया है ।

अरुणध्वज—आह, भोर न-जानें कब होगी ?

मधूलिका—बस, अब भोर ही तो होगी, घबराओ नहीं ।

अरुणध्वज—(छत की ओर एकटक देखते) देखती है, मधु ? देख, देख, माँ बुला रही है ।

मधूलिका—यह क्या बोल रहे हो ?

अरुणध्वज—हाँ, हाँ, माँ बुला रही हैं—कल मेरी शादी होगी

मधूलिका—ऊपर मत देखो, आँखें मूँद लो ।

अरुणध्वज—आँखें मूँद लूँ ? माँ से आँखें मूँद लूँ ! पगली, वह मेरी शादी के सपने देखती स्वर्ग गईं । स्वर्ग में मेरे लिए एक दुलहन खोज रखी है, उन्होंने । और उनसे आँखें मूँद लूँ ?

मधूलिका—(उसकी आँखों पर हाथ फेरते) सो जाओ, अरुण, सो जाओ ।

अरुणध्वज—सो जाऊँ ? अकेले नींद नहीं आती मधु । कल स्वर्ग में ही सोऊँगा । दुलहन के साथ सोऊँगा । तू भी चल न मधु ? मैं दुलहन के साथ सोऊँगा, तू गीत गाना—

मधूलिका—(उसकी आँखों से बरबस आँसू ढलक आते हैं)

अरुणध्वज—तू तो फिर रो पड़ी । चल, तू भी स्वर्ग चल । वहीं तेरी भी शादी कर देंगे । तू भी निश्चिन्त सोयेगी । यहाँ हमेशा रोते रहने से क्या फायदा भला ?

मधूलिका—(आँसू पोछती, आजिजी की आवाज में) सो जाओ, अरुण, बँधजी ने कहा है, बोलो मत ।

अरुणध्वज—बँधजी ने कहा है ? यह बँधजी कौन होते हैं मधु ।

मधूलिका—सो जाओ । (उसाँस लेती है)

अरुणध्वज—(कुछ उत्तेजना में) नहीं, बता यह बँध कौन होते हैं ? वे कौन होते हैं कहनेवाले कि मैं सोऊँ ! बँध ? बँध मुझे क्यों कहेंगे ?

मधूलिका—तुम बीमार जो हो !

श्रम्भपाली :

अरुणध्वज—मे बीमार हूँ ? मे बीमार ? मे बीमार हूँ, तो मेरी शादी कैसे होगी ? (छत की ओर देखते) क्यों माँ, मे बीमार हूँ ? तो तुम क्यों कह रही थी कि मेरी शादी होगी ? (मधु से) मे कब बीमार पड़ा रे ?

मधूलिका—जोर से मत बोलो, उस दिन तुम्हीं न जल्मी हुए ।

अरुणध्वज—हाँ, हाँ, मे उस दिन जल्मी हुआ । उफ, कैसा वह तीर था, गले मे आ लगा । मधु, आह ! (कराहता है) जोरों से दर्द कर रहा है, मधु ! उफ !

मधूलिका—सो जाओ, जोर से मत बोलो । वैद्यजी ने कहा है, जोर से बोलने पर जल्म का टाँका टूट जाने का डर है—गले का जल्म है न ?

अरुणध्वज—टाँका टूटेगा, तो क्या होगा, रे !

मधूलिका—चुप हो अरुण, सो जाओ ।

मधूलिका उसके बालो मे हाथ सहलाने लगती है—अरुण आँखे मूंद लेता है—मर्मन्तक पीडा दवाने की कोशिश की बेचनी और बेकली उसकी पेशानी पर झलक रही है—मधूलिका की आँखो से आँसू टपकते हैं—

थोड़ी देर तक आँखे मूंदे रह फिर अरुणध्वज आँखे खोलता और मधु से पानी माँगता है—मधूलिका पानी पिलाती है—पानी पीकर छत की ओर देखता, बोलता है—

अरुणध्वज—मधु, देख ! वह माँ क्या कह रही है ?

मधूलिका—चुप रहो अरुण, वहाँ माँ नहीं है ।

अरुणध्वज—माँ नहीं है ? क्या कहा, माँ नहीं है ? माँ नहीं है, तो वह कौन है, रे । (ऊपर) क्यों माँ, तू नहीं है ? (मधु से) देख, देख, वह माँ ही तो है । पहचान, पहचान—

मधूलिका—चुप रहो, अब श्रम्बा आती होगी ।

अरुणध्वज—(छठने की आवाज मे) श्रम्बा आती होगी ! हाँ हाँ तू रोज मुझे ठगती है—‘चुप रहो, श्रम्बा आती है’, ‘चुप रहो, श्रम्बा आती है’ । मे हर बार चुप होता हूँ, किन्तु, श्रम्बा कहाँ आई ?

मधूलिका—इस बार जरूर आयगी, तुम चुप तो होओ ।

अरुणध्वज—क्यों मधु, श्रम्बा शादी नहीं करेगी ? आती है, तो कहना, वह भी स्वर्ग चले । हम तीनों वहीं शादी करेगे । शादी करेगे, निश्चिन्त सोयेगे ! (अचानक उत्तेजित होकर) देख मधु, वह श्रम्बा पर तीर... तीर आ रहा है रे, तीर... तीर ! (चिल्लाता है, उठने की कोशिश करता है)

मधूलिका—(उसे पकड़ कर सुलाती हुई, तेजी से) तुम नहीं सोओगे ? मे जहर खाकर रहूँगी ।

अरुणध्वज—जहर ! (बेचनी प्रगट करते हुए) नहीं नहीं मधु, मे सोता हूँ । तू जहर मत खा, मधु । तेरे बिना मुझे कौन देखेगा ? (जल्म पर हाथ ले जाते) आह, तब ! उफ !!

मधूलिका—जरा दबा ले सो । (दबा पिलाती है)

अरुणध्वज—(दवा पीकर) मौसी कब आवेगी मधु ?

मधूलिका—वह आती ही होंगी । मेने रथ भिजवाया है कि वह तुरत रातोरात, आ जायें । अब पहुँचती ही होंगी ।

अरुणध्वज—तू यह क्या पिला देती है, मधु ! मुझे नींद आ रही है । मौसी आवे, तो जगा देना ।

वह आँखें मूंद लेता है—थोड़ी देर बाद उगे नींद आ जाती है —

मधूलिका घर से बाहर आती है—आँगन में देखती है, शुकतारा पूरब के आसमान में काफी ऊपर उठ चुका है—उधर तुला (उडीलराजू) पश्चिम क्षितिज पर जा चुकी है—

रथ का घर-घर शब्द होता है—मधूलिका उधर चौकन्ना होकर देखती है—देखती है, सुमना के साथ अम्बपाली आँगन में घुस रही है—

मधूलिका—तू ! (लपकती हुई) तू ? तू कहाँ से अम्बे ?

अम्बपाली—(मधूलिका में लिपट जाती है) तूने मुझे खबर क्यों न की मधु ? उफ, अरुण कहाँ है ?

मधूलिका—जोर से मत बोल । उसे अभी नींद आई है ।

अम्बपाली—सुना कि तू इतने दिनों से यहाँ है ? अरुण को यह क्या हुआ ? कैसे है वह जल्म ?

मधूलिका—यह सब मत पूछ, अम्बे । दुनिया की यही रीत है । जमीन पर अकेला चकोर तड़पता है, आसमान में तारों से घिरा चाँद हँसता है । सबकी अपनी-अपनी तकदीर होती है ।

अम्बपाली—यह तू क्या बोल रही है, मधु ?

मधूलिका—हाँ, अपनी-अपनी तकदीर । तू राजनर्तकी बनी, अरुण पागल बना, मैं भिखारिन बनी । अब अरुण जा रहा है..... (उसकी आँखों में टपटप कुछ बूँदें गिर पड़ती हैं)

अम्बपाली—हाय यह क्या ? मुझे उसे देखने दे मधु ।

मधूलिका—दूसरी गलती मत कर अम्बे । वैद्यजी कह गये हैं, अधिक उत्तेजना होने से जल्म का टाँका टूट जाने का डर है । कठ का जल्म है, अब खून जारी हुआ, तो फिर उसका बचना.....

अम्बपाली—कंठ का जल्म ! यह क्या हुआ ? कैसे हुआ ?

मधूलिका—यह भी तेरे ही चलते ।

अम्बपाली—मेरे चलते ?

मधूलिका—हाँ, राजनर्तकी बनने से ही तेरा मन न भरा, तो उस दिन तुझे वीरांगना बनने का शौक हुआ था न ? उस, वैशाली की चढ़ाई के दिन ? तेरा वह व्याख्यान ? पागल अरुण ने जिद की, मुझे घोड़ा मोल ले दो, मैं लड़ूँगा । वह लड़ाई मैं गया । हमेशा तेरे पीछे-पीछे लगा रहा । शायद एक तीर तुझ पर चला था ?

अम्बपाली :

अम्बपाली—(रोती हुई) अरे, वह अरुण था ! हाय-हाय, मैं ही उसकी मौत की वजह.....तूने मुझे खबर क्यों न की मधु ? आह !

मधूलिका—न खबर की, न करती । (सुमना से) मौसी, आपने यह क्या किया ? आपको सोधे यहाँ आना था ।

सुमना—मैं क्या जानूँ, मधु । मातृत्व मुझे पहले अम्बा के घर घसीट ले गया । इसने पूछा, कहाँ ? मैंने कहा, मधु ने बुलाया है । तेरा नाम सुनकर ही चौंकी और अरुण की बीमारी का हाल सुनते ही तेरे भेजे रथ पर यहाँ चली आई । विधाता, यह क्या सुन रही हूँ, देख रही हूँ ? (उसका गला भर आता है)

इसी समय घर से कराह की आवाज आती है—तीनों चुप हो जाते हैं—
“तुम दोनों बरामदे पर ठहरो” कहकर मधूलिका दौड़कर भीतर जाती है—

अरुणध्वज—पानी, मधु ।

मधूलिका—(पानी देती) पी लो ।

अरुणध्वज—(पानी पीकर) अब भोर में कितनी देर है, मधु ।

मधूलिका—भोर होने ही जा रही है ।

अरुणध्वज—मौसी भी नहीं आई ?

मधूलिका—तुम चिल्ला पड़ते हो, उठने की कोशिश करते हो, मौसी कैसे आने भला ?

अरुणध्वज—अब न चिल्लाऊँगा, न उठूँगा । मधु, मौसी के दर्शन करा ।

मधूलिका—बादा करते हो न ?

अरुणध्वज—तेरी कोई बात टाली है ?

मधूलिका—अच्छा बुला लाती हूँ, रथ आ गया है, वह पहुँच गई है ।

मधूलिका बरामदे पर जाती है—अम्बपाली को इशारे में ठहरने और चुप रहने को कह सुमना को लिये वह घर में जाती है—अम्बपाली अपने कान टट्टी में लगाये बरामदे पर खड़ी है—सुमना को देखते ही अरुण का चेहरा खिल पड़ता है—

अरुणध्वज—मौसी, मौसी, प्रणाम !

सुमना—आह, बेटा (वह अरुण से लिपटती और उसका माथा चूमती है)

अरुणध्वज—मौसी, कल मेरी शादी है, तुम अच्छी आई ।

सुमना—(चुप, आँखों में आँसू)

अरुणध्वज—तुम रोती हो मौसी ? मेरी शादी है, और तुम रोती हो ! देखो (छत की ओर उँगली उठाकर) वह माँ स्वर्ग से बुला रही है । वहीं शादी होगी ! तुमने भी कहा न था मौसी, अरुण तू सयाना हुआ, वधू क्यों नहीं लाता ?

मधूलिका—मुझसे वादा कर चुके हो न ? चुपचाप सोओ, अरुण !

अरुणध्वज—(सुमना से) देखती हो, मौसी, मधु कहती है, चुपचाप सोओ । कल मेरी शादी है, आज कैसे चुपचाप सो पाऊँ मौसी ?

सुमना—चुप रहो, बेटा ।

अरुणध्वज—चुप रहो, बेटा ! (छत की ओर देखता) माँ, चुप रहें ? बोलो, तुम बोलती क्यों नहीं माँ ? (सुमना से) मौसी, मौसी, देखो, देखो, वह माँ नाराज हो रही है ! ... माँ, माँ ! ...

सुमना—बेटा, बेटा, मेरी ओर देखो !

अरुणध्वज—मौसी, मौसी ! तुम भी स्वर्ग चलो ! मैं चलता हूँ, मधु चलती है, तुम भी चलो ! (छत पर नजर ले जाकर) माँ, मैं आया भाँ ! आया ... आया ! (दोनों हाथ ऊपर फैला देता है) मौसी, मौसी, छोड़ो मौसी ! माँ बुला रही हैं—माँ, माँ, माँ (चिल्लाने लगता है, उठने की कोशिश करता है)

मधूलिका—(उसके मुँह पर हाथ रखती) अरुण, चुप रहो, अरुण !

अरुणध्वज—(भटका देकर उसका हाथ हटा देता है) मधु, छोड़, मधु ! मौसी, मौसी ... आह, माँ बुला रही हैं ! (गुस्से में पुकारता) तू नहीं छोड़ती मधु, तुम नहीं छोड़ती मौसी ?

मधूलिका—(आँसुओं की धारा में) अम्बा आ रही हैं अरुण ! शान्त हो, चुप हो !

अरुणध्वज—(अम्बा का नाम सुनने ही पूर्व-सा ही फिर सहसा शान्त होकर) अम्बा आ रही हैं, मधु ? मौसी, अम्बा आ रही हैं ? ... नहीं, नहीं, अम्बा नहीं आयगी ... अम्बा, ... मौसी, माँ कहती हैं, मेरी दुलहन अम्बा ऐसी है ... अम्बा-ऐसी (मुस्कराता है) ... नहीं, नहीं, अम्बा नहीं आयगी ... वह क्यों आवे ? ... वह राजनर्तकी है—“मधु, मैं राजनर्तकी ! ... अरुण, मैं राजनर्तकी ! ...” नहीं, अम्बा नहीं आयगी ?

मधूलिका—मैं कह रही हूँ, तुम जरा चुप तो रहो—अम्बा आई ही !

अरुणध्वज—(फिर मुस्कराता) अम्बा आई ही ! ... अम्बा ... आई ही ! (चौककर दरवाजे की ओर इशारा करता) हाँ, हाँ, अम्बा आई तो ... वह अम्बा आई ... अम्बा ... अरे, यह क्या ? ... मधु ... मधु ... तीर ... तीर ... अम्बा की ओर तीर ... अम्बा की ओर तीर ... बचा रे, बचा ... तीर ... तीर ... तीर ...

आँखें फाड़ता, चिल्लाता, वह पूरे जोर से उठना चाहता है—मधूलिका और सुमना उसे पकड़ती हैं—दोनों स्त्रियों की आँखों से आँसू जा रहे हैं—उधर इन बातों को गुनकर बरामदे पर अम्बपाली जार-बेजार रो रही है, उसके हिचकियों पर हिचकियाँ आ रही हैं—लेकिन मुँह से आवाज नहीं निकलने देती—

सुमना—बेटा, अरुण बेटा !

अरुणध्वज—(कुछ शान्त होकर) मौसी, माँ ! ... मौसी, माँ ! ... माँ, माँ ... मौसी, मौसी ... (जैसे फिर वायु का दौरा आ जाय) देखो, देखो, मौसी ... अरे, तीर, तीर ... अम्बा पर, अम्बा पर ... तीर ... तीर ... छोड़ो मौसी ... छोड़ मधु ... तुम नहीं छोड़ती ... तू नहीं छोड़ती ... छोड़ो ... छोड़ ...

अचानक न जाने उसमें कहाँ से ताकत आ जाती है—वह दोनों ओरतो को भटके दे देता है और आधा खड़ा हो जाता है—फिर दोनों उसमें लिपट जाती है—इतने में

अम्बपाली :

मधूलिका का ध्यान उसकी गर्दन पर जाता है—टाँका टूट जाने से गर्दन की पट्टी पर खून की धारा बही जा रही है—मधूलिका चीख उठती है—

मधूलिका—मौसी, खून ! टाँका टूट गया मौसी ! हाय ! अम्बे, अम्बे ! बँछ-बँछ !

अब अम्बपाली में नहीं रहा जाता है—वह घर में घुसती है और 'अरुण-अरुण' चिल्लाती उससे लिपट जाती है—

अरुण अम्बपाली की आवाज सुनते ही ढीला पड़ जाता है, उसको देखते ही उसकी आँखें चमक पड़ती हैं—वह बिछावन पर लेट जाता है और उसके मुँह में निकल पड़ता है—

अरुणध्वज—अम्बे, आह !

अम्बपाली—अरुण, हाय अरुण !

मधूलिका—(खून से लयपथ पट्टी पर हाथ रखे) अम्बे, बँछ ला अम्बे ! जा, जा—अम्बे, अम्बे !

अम्बपाली उठना चाहती है—अरुण उसका हाथ पकड़ लेता है—उम हाथ को वह अपनी छाती पर खींचकर ले जाता है—आँखें मूँदते हुए वह धीमे-धीमे कहता है—

अरुणध्वज—अम्बे, तू आ गई····तू भी चल अम्बे····चलेगी····चल····
(धीरे-धीरे आँखें खोलते और छत की ओर देखते हुए) देखती है अम्बे····माँ बुला रही है····माँ····माँ····म····।····

उसके होठों पर मुस्कान की रेखा खिच जाती है—चेहरे पर एक ज्योति दीड जाती है—फिर खुली आँखें खुली ही रह जाती हैं और माम का चलना यकायक रुक जाता है—
इस ओर सबसे पहले सुमना का ध्यान जाता है—वह चिल्ला उठती है—

सुमना—हाय, हाय ! यह क्या हुआ ? अरुण ! अरुण !

मधूलिका }
अम्बपाली } —(एक साथ ही) अरुण ! अरुण !

सुमना—(उसकी नाक के सामने हाथ ले जाकर) सर्वनाश अम्बे ! अरुण नहीं रहा मधु !

सुमना और अम्बपाली अरुण की लाश से लिपट जाती और "अरुण, अरुण" चिल्लाती है—लेकिन अचानक मधूलिका की मुखमुद्रा गम्भीर हो जाती है—वह गम्भीरता से बोलती है—

मधूलिका—सुन, अम्बे ! (जोर से) अम्बे, सुन !

अम्बपाली—(प्रातःप्रो ने भीगा चेहरा उठाती) मधु, अरुण ! हाय अरुण ! ····

मधूलिका—रोने से न बनेगा अम्बे ! मैं अब चली ?

अम्बपाली—मधु ! मधु !!

मधूलिका—मधु, मधु नहीं ! मधु चली । यह तेरा बोझ था अम्बे ! इसकी जिन्दगी मैंने ढोई, अब लाश तू ढो !

अम्बपाली—मधु, मधु ! यह क्या मधु ? ओहो (रोती है)

मधूलिका—हाँ, जो जिन्दगी नहीं होता, उसे लाश ढोनी पड़ती है अम्बे ! तू लाश ढो, तब तमझ सकेगी, किसीकी जिन्दगी ढोना क्या चीज है ! मैं चली मौसी, प्रणाम !

मुपना—बेटी ! बेटी !

मधूलिका भट घर से निकलती है—तीन-चार डग में ही वह आँगन में आ जाती है—‘मधु, मधु’ पुकारती अम्बपाली उसके पीछे आती है—मधूलिका मुडकर—“जिन्दगी नहीं ढोई, तो लाश ढो” कहती आँगन से बाहर हो अग्रहार में अन्तर्धान हो जाती है—

२

अम्बपाली का मोने का कमरा—वह पलंग पर लेटी है—एक कोने में धुंधली रोशनी टिमटिम कर रही है—वह बार-बार करवटे बदलती और आँखें आँखें खोलती हुई उठ बैठती है—फिर पलंग के नीचे आकर टहलने लगती है—

थोड़ी देर टहलकर फिर पलंग पर जाती और मोने की चेष्टा करती है—आँखें मूंदती, करवटे बदलती और हार-दारकर नींद न आती देख फिर पलंग के नीचे आती है—दीवार पर जो वीणा टंगी है, उगे लेकर बजाने लगती है—

उसका वेश बिल्कुल शृङ्गार-भूषा में हीन है—वाल खुले, चेहरा उदाग—करुणा की मूर्ति-सी वह दीख पड़ती है—

वीणा पर वह गाना है—

टूटने जब बीन के है तार !
 उँगलियों का हो भले नर्तन,
 कंठ का स्वर दे मनोहर स्वन.
 ताल हो, लय हो,
 मूर्च्छना हो, मीड़ हो, संगीत की जय हो !
 किन्तु, फिर उठती नहीं वह प्राणमय झकार
 जो बहाती जगत में रस-धार
 और लाती जिन्दगी में भावना का ज्वार
 प्रेम के गुञ्जार के बदले—
 प्रगट होता विषम हाहाकार !
 टूटने जब बीन के है तार !!

गाते-गाते उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बही जा रही है—उसी समय चयनिका दरवाजे से झाँकती और भीतर आती है—वह होले पाँव आकर उसके पाम खड़ी है और अम्बपाली रोये और गाये जा रही है—जब गाना समाप्त होता है, चयनिका कहती है—

अम्बपाली :

चयनिका—भद्रे, आज भी अबतक नहीं सोई ?

अम्बपाली—(चीककर, आँभू पोछती) ओहो, चुन्नी ! कितनी रात गई रे !

चयनिका—रात क्या गई, अब तो शुक तारा उग चुका । यों सारी-सारी रात जगना क्या उचित है, आर्ये !

अम्बपाली—शुक तारा ! उस रात भी शुक तारा उग चुका था ! (उसाँस लेती है, लेकिन, तुरत महसूस करती है कि वह क्या बोल गई और बात बहलाने को सोच ही रही है कि चयनिका पूछती है—)

चयनिका—(माश्चर्य) किस रात, भद्रे ! यह क्या बात है कि जब से उस रात मौसी झाई और गई, तब ने आप ज्यों ही अबेली हुई कि रोने लगीं ! यह रात-दिन का रोना !!

अम्बपाली—रात-दिन का रोना ! चयनिके, बिधाता ने मानवता को भाषा क्यों दी ? क्यों न यह भी कुररी-सी रोती, कोयल-सी कुहकती, पंडुक-सी कुहरती और बुलबुल-सी चीखती अपनी जिन्दगी बिता देती है ! बातों में इते कीन-सा रस मिलता है, चुन्नी !

चयनिका—कोई क्षण ऐसा भी होता होगा आर्ये, जब कुररी, कोयल, पंडुक या बुलबुल की जिन्दगी में आनन्द की रसधारा बहती होगी । अगर ऐसी बात नहीं होती, तो वे जिनदा नहीं रह पातीं, भद्रे !

अम्बपाली—आनन्द की रसधारा ! आनन्द की रसधारा की तह में क्या है, क्या अम्बपाली से बढ़कर कोई जानता है ? जिस तरह श्रंगूर को सड़ाकर शराब बनाई जाती है—उस हरे-हरे, गोल-गोल, रस से शराबोर, मिठास से लबालब, गुच्छों को पुराने बर्तन में रखकर, ढककर, जमींदोज कर, सड़ा-गलाकर आदमी शराब का नाम देता और उसके—गले को जलानेवाले, भूलसानेवाले—घूँट पीकर मत्त बनता, पागल बन जाता है ; आनन्द की रसधारा भी कुछ ऐसी ही चीज है, चयनिके ! यह रसधारा नहीं, मृग-मरीचिका है । यदि मानवता इस मृग-मरीचिका में न फँसी होती, तो न जाने कब न उसने देवत्व प्राप्त कर लिया होता ।

चयनिका—मैं इन बड़ी-बड़ी बातों को नहीं समझ पाती भद्रे, लेकिन, यह दिन-रात का रोना—उफ !

अम्बपाली—फिर वही बात ! रुदन इतनी घृणा या उपेक्षा की चीज नहीं है, चयनिके । मानती हूँ, एक जमाना था, मैं भी उसे इसी दृष्टि से देखती थी । लेकिन, तब मैं भ्रम में थी, चुन्नी । जिस तरह दुनिया का पाप-ताप धोने को गंगा भू पर अवतीर्ण हुई, उसी तरह मानवता के पाप-ताप, दर्द-जलन धोने-बुझाने को बिधाता ने आँसुओं की गंगा-यमुना बहाई है । हमारे हृदय-कमंडलु में संचित यह पावन धारा, किसी दर्दिले भगीरथ की संवेदना या कातर याचना पर, अचानक ऊर्ध्वगामी होती, मस्तक-हिमाचल पर लहराती, फिर काल-ऐरावत के दो दाँतों द्वारा दो आँखों की राह पाती, हरहर करती, गिरती है और अपनी उज्ज्वल युगल धारा में जग की सारी कालिमा और क्लिष को

बहा ले जाती है। यदि किसी की आँखों में आँसू देखो, उसे नमस्कार करो ! आँसुओं पर घृणा या उपेक्षा संसार की सबसे बड़ी नास्तिकता है, चयनिके !

चयनिका—उपेक्षा या घृणा की घृष्टता इस अनुचरी से क्या हो सकती है, भला ? मैं तो देवी के आँसुओं को देखते ही धीरज खो देती हूँ। इधर तो आप दर्पण भी नहीं देखतीं, नहीं तो अपना चेहरा देख पातीं—

अम्बपाली—चेहरा ! चेहरे का रहस्य भी अच्छी तरह समझ चुकी हूँ, चुप्री ! गालों के गुलाब में कितनी गंध है, भवों की कमान में कितनी तीरंदाजी है ; अग्रहों के बिम्ब में कितना रस है, दाँतों के दाड़िम में कितनी मिठास है ; नासिका के शुक में कितनी उड़ान है, आँखों के खंजन में कितनी परबाजी है ; ललाट के चाँद में कितना श्रम है और लटों के साँप में कितना जहर है—सब देख चुकी, आजमा चुकी, जान चुकी। उसकी 'हाँ' देखो, उसकी 'ना' देखो। उसकी हाँ देखी—मगधपति के सामने, उसकी ना देखी—भगवान बुद्ध के सामने ! और लोग तो दोनों छोरों के बीच में चक्कर काटते ही रह गये, चयनिके !

चयनिका—देवी मैं अपनेसे, संसार से इतनी उदासीनता, इतनी विवर्णता क्यों पा रही हूँ ?

अम्बपाली—अपने से उदासीनता, संसार से उदासीनता—दोनों का एक ही मतलब है, चयनिके ! जबतक अपने से उदासीनता न हो, संसार से उदासीनता हो ही नहीं सकती। और संसार के धक्के ही तो अपने में उदासीनता पैदा करते हैं। 'स्व' और 'संसार' का एक अजीब गोरखधंधा आदिकाल से चला आ रहा है ! ये एक-दूसरे को प्रभावित किया करते हैं और इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के भँवर में मानवमन तुच्छ तिनके-सा डूबता-उतराता रहता है ! अम्बपाली अबतक भँवर के ऊपर नाच रही थी, अब वह उसकी चपेट में गोते खा रही है !

चयनिका—लेकिन क्या अनुचरी को इतना भी हक नहीं है कि वह उस बात को जाने जिसने वंशाली की राजनर्तकी के विशाल हृदय को भी यों व्यथित, द्रवित कर दिया है !

अम्बपाली—तुम्हें सब कुछ जानने का हक है, चयनिके ! तू ही है, जिससे मन की बातें कहकर दिल हल्का करती आई हूँ। लेकिन, दुनिया में कुछ ऐसी बातें हैं, जो कही नहीं जा सकती और जिनके न सुनने में ही कल्याण है।

चयनिका—तो देवी रोया करे और मैं चुपचाप देखा करूँ ? क्या मैं पत्थर की बनी हूँ, क्या मेरे हृदय नहीं ? इससे तो अच्छा है, चयनिका की मुश्कें बाँध दें, उसे तहखाने में डाल दें कि वह घुट-घुटकर वहीं मर जाय ! (उमका गला भर आता है, आँखें उमड़ पड़ती हैं)

अम्बपाली वीणा को पलंग पर रख देती और हाथ पकड़कर चयनिका को अपने निकट बैठाती है—फिर उसकी ठुड़ी हाथ में ले दुलराती हुई कहती है—

अम्बपाली :

अम्बपाली—पगली, तू ऐसा करेगी, तो मेरी गति क्या होगी ? जब नाव डूबती है तो सिर का घास का गट्टर ही—तुच्छ तिनकों का वह समूह ही—उसके ढोनेवाले के प्राण का रक्षक सिद्ध होता है। कम से कम, कुछ देर तक उसे पकड़कर वह अपनेको बचाये रखता ही है। अम्बपाली की नाव टूट चुकी है, चयनिके ! वह अपनी जल-समाधि स्पष्ट देख रही है—जल-समाधि या सम्यक् समाधि ! (सामने दीवार में सटी वृद्ध की मूर्ति पर उसकी नजर जाती है और वह उसे सिर नवाती है)

चयनिका—(आश्चर्यमृदा में) तो क्या आप बौद्ध धर्म स्वीकार करने जा रही है ?

अम्बपाली—अब समय में आई है, चुन्नी, कि आदमी क्यों विराग लेता है, क्यों भिक्षु बनता है। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जो स्वभाव से ही दुनिया के रागरंग से परे होते हैं। उनका मन प्रशान्त सागर होता है, जिसमें कितनी ही नदियाँ पानी डालें, जिसके ऊपर कितनी ही कलाशो से चन्द्रमा चमके, लेकिन जिसमें न तो बाढ़ आती है, न तरंगे उठती हैं—(उँगली से वृद्धमूर्ति को दिखाती) देख, इस ओर ! कंसी शाश्वत शान्ति ! कामना या भावना की एक रेखा भी कहीं पाती है ? लेकिन, ज्यादातर मानव-मन भरने की तरह होता है, जो शुरु में कलकल-छलछल करता, तरंगों से युक्त, फेनों से भरा, कभी इधर, कभी उधर भटकता-बहकता, चक्कर काटता, गिदगिद भरता, अन्ततः नदी या नद में परिणत हो, अपनी गति से आप ही धुब्ध, अपनी उठाई हुई लहरो से आप ही थपेड़े खाकर हाहाकार, आत्तनाद कर उठता है और त्राहि-त्राहि करता किसी सागर में अपनेको रख देता है ! हाँ, यहाँ भी भाग्य पर निर्भर है कि वह प्रशान्त सागर प्राप्त करता है या फिर किसी वंगोपसागर की घ्राण में ही हाहा खाता रहता है। संन्यास या भिक्षुपन कुछ नहीं, थकी हुई आत्मा का आत्मसमर्पण है चयनिके ! अम्बपाली भी थक चुकी। अब इससे यह बोझ नहीं ढोया.....

वह अचानक रुक जाती है—छत की ओर देखती है—उसके भय-विस्फारित नेत्रों की टकटकी देव चयनिका काँप उठनी है—देखते-देखते अम्बपाली के गाल आँसुओं से तर हा जाते हैं—चयनिका घबराई हुई कहती है—

चयनिका—आर्ये, आर्ये ! यह आप क्या देख रही हैं ?

अम्बपाली—(अपनेको मम्हालती, आँसू पोछती) क्या देख रही थी ! अच्छी बात है, चुन्नी, तू नहीं देख पाती। (थोड़ा रुककर) अच्छा, तूने किसी से प्रेम किया है, रे !

चयनिका—(लज्जा से गड़-सी जाती है) आर्ये !

अम्बपाली—तू संकोच कर रही है। ठीक ही तो। इससे बढ़कर बेबकूफी का सवाल और क्या हो सकता है ? 'तूने प्रेम किया है !'—जैसे, प्रेम कहने की चीज हो। जो जबान पर आये, वह भी क्या प्रेम है ? हमारे ऋषियों ने कहा है, सुकर्म को जिह्वा पर मत लाओ, जिह्वा पर अग्निदेव है, वह उसे जला देगे, भस्म कर देगे। बहुत ही सही चयनिके ! कोई भी पावन चीज जिह्वा पर नहीं लानी चाहिए। फिर प्रेम ! जिह्वा

अग्नि है, तो प्रेम बर्ष। वह तो उसकी आँच से ही गल जाती है ! राधा किसीसे अपनी प्रेमव्यथा कहने गई—हाँ, उसका मूक प्रेम कितने कवियों की वाणी का शृङ्गार बन गया और अनन्त काल तक बनता रहेगा। यही प्रेम की महत्ता है ! इसी वंशाली में रहकर श्रृणु क्या शम्बपाली से अपना प्रेम कहने आया और हमेशा उसके साथ छाया—सो घूमती हुई भी मधूलिका ने श्रृणु से अपना प्रेम कहा ! (उसका गला भर आता है)

चयनिका—भद्रे, यह सब आप क्या कह रही है ?

शम्बपाली—चुप रह चयनिके, चुप रह। मौसी ने कहा था, यह अभिमान नहीं, आत्मवंचना है, शम्बे। अब उनके कथन की सचाई मालूम हो रही है। शृङ्गार, संगीत, उत्सव—ये सब क्या चीजे हैं, तू जानती है ? यों ऊपर से देखने पर तो ये आत्म-प्रदर्शन के साधन मालूम होते हैं, लेकिन जरा गहरे जा, तो मालूम होगा, इनके द्वारा आदमी अपनेको भूलाने की चेष्टा करता है। अपनी शारीरिक वृष्टि को शृङ्गार से ढकना चाहता है, अपने हृदय के हाहाकार को वीणा के गुञ्जार में छिपाना चाहता है और अपने दुःख-शोक को उत्सव में विलीन करना चाहता है। उफ, मानव, मानव, तूने अपनेको धोखे में रखने के लिए क्या-क्या न प्रयत्न किये ! लेकिन, हाय रे, मानव ! अभिशप ने कभी तेरा साथ न छोड़ा। वह छाया बनकर तेरे पीछे लगा है, पड़ा है—ज्यो-ज्यों तू प्रकाश की ओर दौड़ते हो, वह और भी स्पष्ट और लम्बा होता जाता है। शम्बपाली, शम्बपाली, इतने दिनों तक तू जिसे भुलाये रही, उसने एक दिन तेरी सारी हँकड़ी भुला दी (अपने हाथों में चेहरा ढक लेती है) उफ, आह !

चयनिका—(सिसकियाँ भरती) भद्रे भद्रे !

शम्बपाली—(चेहरे से हाथ हटाती है, गारा चेहरा आगू में भीगा है) चुन्नी, चुन्नी ! समझा, तू सोने को कहेगी ! मेरी प्यारी बच्चो, तेरी आज्ञा सिर-आँखों पर ! (उसकी ठुठ्ठी पकड़ती और नूमती है) लेकिन, चयनिके, शम्बपाली के सोने के दिन चले गये। अब तो उसके कंधों पर एक थाती दे दी गई है ! उफ री निठुर थाती ! (फिर छत की ओर देखती) मधु, मधु, तू यह क्या कर गई रे ! मुझसे यह नहीं ढोई जाती है, मधु ! “जो जिव्दगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है !” काश, तू जान पाती, मैंने जिव्दगी भी लाश ही की तरह ढोई है ! !

३

वंशाली का कूटागार—एक ऊँचे टीले पर बना एक रमणीक विहार—विहार का पश्चिमी बरामदा—

सूरज डूबने जा रहा है—डूबते हुए सूरज में ऐसी तिरछी लाल किरणें फूट रही हैं, जैसी भोर में दिखाई पड़ती है—हाँ, भोर की किरणों में जहाँ मुनहलापन अधिक होता है, इनमें लाली अधिक है—

अम्बपाली :

कुछ चिड़ियाँ इस लाली-भरी पृष्ठभूमि में उड़ती क्षितिज की ओर जा रही हैं—
वे ऐसी मालूम होती हैं, मानो लाल सागर में बच्चों ने रंगीन कागज की छोटी-छोटी नावें
बहा दी हों—

डूबते हुए सूरज की इस लाली से बरामदे का यह हिस्सा अजीब मुनहला लग रहा
है—बरामदे की एक-एक चीज दिप-सी रही है—सूरज की ओर रुख किये ध्यानमग्न बैठे
गोरे भगवान बुद्ध तो बिल्कुल सोने की मूर्ति में लग रहे हैं—शरीर में जरा भी स्पन्दन तक
नहीं अनुभव होता—

भगवान बुद्ध से थोड़ी दूर हटकर भिक्षु-प्रवर आनन्द बैठे भगवान बुद्ध का चेहरा
विमूग्ध होकर निहार रहे—

अम्बपाली आती है—बिल्कुल सादा है वेश उसका—हीले-हीले भगवान के निकट
पहुँच उन्हें सिर झुका मौन ही मौन प्रणाम करता और आनन्द के इशारे पर कुछ दूर हट
कर बैठ जाती है—

कुछ देर में भगवान बुद्ध आखे खोलते हैं—सूरज की ओर देखते हैं—अम्बपाली
उठकर फिर उन्हें प्रणाम करती है—वह मुस्कुरा पड़ते हैं, कहते हैं—

भगवान बुद्ध—आप आ गईं, भद्रे !

अम्बपाली—हाँ, भगवान !

भगवान बुद्ध—आपका यह वेश ?

अम्बपाली—मैं देख चुकी, भगवान, आदमी दो में से एक का ही शृङ्गार कर
सकता है—तन का या मन का ।

भगवान बुद्ध—सबसे बड़ा सत्य वही है, भद्रे, जिसपर आदमी खुद अपने अनुभवों
से पहुँचे ।

अम्बपाली—लेकिन मेरे-ऐसे अनुभवों से पार होने का दुर्भाग्य किसी को भी प्राप्त
न हो, भगवन् !

भगवान बुद्ध—(मुस्कुराते हुए) वैशाली की राजनतंकी और दुर्भाग्य !

अम्बपाली—(खिन्न स्वर में) भगवान, मुझे को कांटों में मत घसीटिये ! जो
जिन्दगी भर दीपशिखा-सी खुद जलती और दूसरों को जलाती रही, अगर उसकी भी
जिन्दगी सौभाग्य की हो, तो फिर दुर्भाग्य कहेंगे किसे, भगवान ?

भगवान बुद्ध—जब वासनाओं से विरक्ति आ जाय, तब समझना चाहिये, अन्तर
का देवता जग उठा !

अम्बपाली—अन्तर का देवता क्या है, मैं नहीं जानती, भगवान । हाँ, मेरे अन्तर
में आग लगी है, जो मुझे जला रही है, झुलसा रही है, यह अनुभव करती हूँ । हृदय में
जैसे चिनगारियाँ फूटती रहती हैं ; नसों में, शिराओं में खून की जगह जैसे बिजली दौड़ती
रहती है ! जागरण, जैसे वृश्चिक-वंशन ! निद्रा, जैसे शूल-शयन ! यह जिन्दगी है या
मौत ? (कातरता से) मुझे बचाइये भगवन् !

भगवान बुद्ध—कोई किसी को बचा नहीं सकता, भद्रे ! जहाँ आग की लपट है, उसके निकट ही पानी का भरना है । अशान्ति के कंटक-कानन में ही शान्ति की चिड़ियों का घोंसला है । उस भरने, उस घोंसले को खुद खोजना होता है । दूसरा, ज्यादा से ज्यादा, रास्ता-भर बता सकता है ।

अम्बपाली—जैसे इस मार्ग-दर्शन का कोई महत्त्व ही नहीं ?

भगवान बुद्ध—है ; तभी तो तयागत को घर छोड़कर जंगल-जंगल की खाक छानती पड़ी । बड़ी तपस्या, बड़ी साधना के बाद उस मार्ग का पता लगाया है ; लेकिन जो मार्ग उमें मालूम हुआ, उसका निष्कर्ष सिर्फ इतना ही है कि ऊपर का कोई देवता और नीचे का कोई आदमी किसी को निर्वाण या मुक्ति नहीं बिला सकता । उस मार्ग पर स्वयं चलना होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं ।

अम्बपाली—प्राज उसी मार्ग की दीक्षा लेने आई हूँ, भगवान ! मार्ग बनाइये, मैं चलने को तैयार हूँ ।

भगवान बुद्ध—भद्रे, जरा सोचिए, आप यह क्या कर रही हैं ?

अम्बपाली—सोच चुकी हूँ, भगवान ! अच्छी तरह सोच चुकी हूँ । याद है, आपने कहा था—“तुम विचित्र नारी हो ।”

भगवान बुद्ध—(मुँह कुराने हुए) उसकी एक झलक प्राज भी देख रहा हूँ ! निराशाएँ हमें कहीं भी उड़ा ले जा सकती हैं ।

अम्बपाली—सिर्फ निराशा की बात मत कहें, भगवान । निराशा का प्रतीकार अम्बपाली जानती है । अगर भगवान ने उस यात्रा में नर्तकी पर कृपा न की होनी, तो (रुक जाती है)

भगवान बुद्ध—तो क्या ? जरा सुनं । (फिर मुँह कुराने है)

अम्बपाली—(तेजस्विता के साथ) जो कायर होते हैं, वे मोड़ पर रुक जाते हैं । जिनके दिल में हिम्मत है, वे एक पथ पकड़ते और चल देते हैं, चाहे वह पथ जहाँ ले जाय—स्वर्ग या नरक—ये एक ही सिक्के के दो रुख हैं, भगवान !

भगवान बुद्ध—(गम्भीरता से) सिर्फ तेजस्विता बड़ी खतरनाक चीज है, आयें ! उसके मुँह में साधना की लगाम होनी चाहिए, नहीं तो न जाने वह किस अंधगुफा में ले जाकर पटक देगी ! राजनर्तकी, सावधान !

अम्बपाली—(प्रकृतिस्य होकर) जिसने एक बार प्रकाश की किरण देख ली, उसकी आँखें धोखा नहीं खा सकती हैं, भगवान ! इसीसे प्राज वैशाली की राजनर्तकी भिक्षुणी बनने को भगवान के चरणों की शरण में आई है । (घटने ठेककर मिर झुका देती है)

भगवान बुद्ध—(आश्चर्य) भिक्षुणी !

अम्बपाली—हाँ, अम्बपाली ने तय कर लिया है कि अब वह अपनी जिवन्तो धर्म-मार्ग पर चलने और धर्म का संदेश घर-घर पहुँचाने में ही बिनायगी ।

अम्बपाली :

भगवान बुद्ध—लेकिन तथागत के धर्मसंघ में भिक्षुणी का विधान नहीं।

अम्बपाली—क्या कहा, भगवान ? भगवान के धर्ममार्ग में नारियों के लिए स्थान नहीं !

भगवान बुद्ध—नारियों के लिए स्थान नहीं, ऐसा नहीं कह सकते। हर आदमी—स्त्री-पुरुष—तथागत के धर्म-मार्ग पर चल सकता है। लेकिन, नारियों के लिए भिक्षुणी बनना

अम्बपाली—(उल्लेखना में श्रीन ही में बात काटकर) उचित नहीं है, यही न कह रहे थे भगवान ? क्या मैं पूछ सकती हूँ, क्यों उचित नहीं है ?

भगवान बुद्ध—उत्तेजित मन हों भद्रे ! हर 'क्यों' का जवाब नहीं होता।

अम्बपाली—लेकिन जिस बात का सम्बन्ध किमी की जिवन्मी में है—उसके अस्तित्व की 'हां' और 'ना' से हैं, उसे हक है कि वह ऐसा मवान करे और यह उचित है कि उसे जवाब दिया जाय।

भगवान बुद्ध—आपको मानूम ही होगा, देवी प्रजावती और राहुलमाता यहां आई हुई हैं।

अम्बपाली—देवी प्रजावती धन्य हैं जिन्हें भगवान की मौसी होने और उन्हें गोद खिचाने का सुअवसर मिला और राहुलमाता यशोधरा तो इतिहास में अमर ही हो चुकी।

भगवान बुद्ध—इन दोनों ने भी यही इच्छा प्रगट की थी, किन्तु तथागत ने उन्हें 'नाही' कह दी।

अम्बपाली—आपने 'नाही' की होगी, भगवान। यह कोई आदित्य की बात नहीं है। हमेशा से आपने पर अत्याचार होता आया है। साधारण जनो द्वारा और महात्माओं द्वारा भी। लेकिन, भगवान जिस आसानी से देवी प्रजावती और यशोधरा को 'ना' कह सकते थे, और वे मान 'ना' सकती थी, उतनी आसानी से न तो आप अम्बपाली को 'नाही' कह सकते हैं और न उसे मना सकते हैं।

भगवान बुद्ध—लेकिन, मेरी लाचारी जो है ?

अम्बपाली—क्या अभागी अम्बपाली से भी बढ़कर ? (उमामें लेती है)

भगवान बुद्ध—आपकी लाचारी ?

अम्बपाली—(महत्मा उसके चेहरे पर विपाद छा जाता है, आंखें भर आती हैं, गला भर जाता है) भगवान, मत कहलाइए ! आपमें छिपा क्या है ? दिन-रात लाज ढोते-ढोते तंग आ चुकी। जबनक जगो रहती हूँ उसके बोझ से कंधा टूटता, दम फूलता रहता है। एक तो दर्द के मारे नींद नहीं आती, यदि कदाचित् आई, तो कंधे का बोझ सीने पर होता है ! सांस घुटने लगती है, कलेजा फटने लगता है—चिल्लाना चाहती हूँ, आवाज नहीं निकलती, धिंधी बंध जाती है। व्याकुलता की पराकाष्ठा में

जब नींद टूटती है, तो बिछावन, तकिया, सब तर-बतर पाती हूँ । भगवान, भगवान, मुझे बचाइए—(अपनी हथेली से मुँह ढँककर हिचकियाँ लेती हूँ)

भगवान बुद्ध—धीरज, भद्रे, धीरज !

अम्बपाली—(भर्राई आवाज में ही) धीरज की भी हद होती है, भगवान ! आह, वही धीरज विधाता नारियों के दिल में दिये होता, जिसे पुरुषों के हृदय में इतनी प्रचुरता से दिया है । जिस आमांसी से भगवान राहुल-माता को प्रसूतिगृह में छोड़ भागे, उसी आमांसी से राहुलमाता, भगवान की 'ना' के बाद भी, उन्हें छोड़ पातीं !

भगवान बुद्ध—भद्रे, भावना पर यों न बहें, विवेक से काम ले । जरा सोचें—तथागत के धर्म का मध्यम मार्ग तो सयोंके लिए खुला है, लेकिन जहाँ तक भिक्षुसंघ की बात है..... (एक जाते हैं)

अम्बपाली—धर्म का मध्यम मार्ग तो समझा, लेकिन उसका मतलब मार्ग के मध्य में जाकर रुकना नहीं हो सकता, भगवान ! फिर, अम्बपाली जिस राह पर चलेगी, पूरी चलेगी, मध्य में रुक नहीं सकती ! उहुत धोखा खा चुकी हूँ भगवान ; अब मैं अपनेको ज्यादा धोखा नहीं दे सकती !

भगवान बुद्ध—तब ?

अम्बपाली—मुझसे मत पूछिए, मुझे इस लाश को उतारना पड़ेगा, भगवान ! या तो इसे पीला वस्त्र उतार सकता है, या..... (अचानक वह अंधर की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगती है) देखिए, भगवान, वह देखिए ! मैं बचपन से ही सपने देखती आ रही हूँ ; लेकिन, दिनरात यह सपने का दृश्य ! उफ ! मैं इसे ढो नहीं सकती, जिन्दा रह नहीं सकती । मुझे आत्महत्या के महापाप से बचाइए भगवान ! (उगली आँखों से आँगुओं की धारा बहने लगती है ; गिर में पावन कणोंपर वह चेहरे को हथेलियों में ढकती, फिर जमीन पर घुटने टेक अपने हाथों को बुद्ध के चरणों की ओर पसार देती है)

भगवान बुद्ध—आर्ये, आर्ये !

अम्बपाली—भगवान ! भगवान !

भगवान बुद्ध उसके इस आत्ममर्षण से व्याकुल हो जाते हैं—समझ में नहीं आता कि उससे क्या कहें—वह 'आनन्द' की ओर देखते हैं—आनन्द भगवान का अमर्जस देख अम्बपाली के निकट आकर उसे उठाते हुए कहते हैं—

आनन्द—आर्ये, उठे ! आज आप जायें—कल फिर भगवान के दर्शन करें ।

अम्बपाली—(सिर उठानी है, आँखों से आँसू जा रहे हैं) भगवान, जाऊँ ? आपकी यही आज्ञा है ?

आनन्द—यह भगवान की ही आज्ञा है ।

अम्बपाली :

अम्बपाली—हाथ रे मेरा दुर्भाग्य ! मेरे लिए भगवान आज ही प्रतिमा बन रहे हैं ! आह ! (बुद्ध के मुंह की ओर एकटक देखती है—आँसू अनवरत जारी है)

भगवान बुद्ध—(गम्भीर वाणी में) भद्रे ! श्रद्धा प्रतिमा को भी बोलने की लाचार करती है—उससे वरदान लेती है। तुम अपने पर विश्वास रखो, सभी साधन तुम्हें आप ही प्राप्त होंगे !

अम्बपाली “भगवान, भगवान” कह, घुटने टेक, जमीन से सिर सटाकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करती है ; फिर हाथ जोड़े ही मुड़कर चलती है—सूरज डूब चुका है, लाल आसमान के ललाट पर लाल मंगल-तारा चमक रहा है—अम्बपाली मुड़ते समय उसे देखकर प्रणाम करती है और हाथ जोड़े ही वहाँ से धीरे-धीरे चल देती है—उसके चले जाने पर भगवान बुद्ध आनन्द से कहते हैं—

भगवान बुद्ध—आनन्द !

आनन्द—भगवान !

भगवान बुद्ध—अम्बपाली को मैं जानता हूँ, आनन्द ! इसके संघ में आने से संघ को लाभ ही होगा। नारियों द्वारा तथागत का सन्देश घर-घर में ही नहीं, दूर-दूर देशों तक फैलेगा, यह भी मैं देख रहा हूँ। लेकिन मैं आनेवाले दिनों से डरता था। अभी तो प्लवार के दिन हैं, जिसके प्रवाह में सभी गंदगियाँ बह जाती, धुल जाती हैं। लेकिन जब भाटा आता है, अच्छा पानी भी प्रवाह से दूर होकर गंदला हो जाता है, आनन्द। इसीलिए मैं नारियों को संघ में नहीं लेना चाहता था। मुझे डर है, आगे चलकर संघ की यह बड़ी कमजोरी साबित होगी और तथागत का धर्म जितने दिनों संसार में रहता, उसके आधे दिनों तक ही रह पायगा।

आनन्द—तो मना कर दीजिए न ?

भगवान बुद्ध—आह ! मैं मना कर पाता ! मैं देवी प्रजावती को, राहुलमाता को ‘नाहीं’ कर सका था, किन्तु इससे नहीं कर सका। यह विचित्र नारी है, आनन्द ! उस बार इसने कहा था—मैं भगवान पर विजय प्राप्त करूँगी ! यह आज सचमुच जीत गई !

४

सारी वैशाली निस्तब्ध सोई हुई है—सिर्फ जाग रहे हैं आकाश में कुछ तारे, जिनकी ज्योति भी उदयाचल की धीमी लाली की आभा से भंद पड़ती जाती है—और वृक्षों पर जग पड़े हैं अपने खोतो में निश्चिन्त सोये कुछ पछी—हाँ, कुछ ही और वे भी एकाध बार ही चोच खोलकर चहचह कर उठते हैं, क्योंकि अभी भोर होने में कुछ देर है—पृथ्वी पर कभी-कभी, यहाँ-वहाँ से, गायों की रँभाई सुनाई पड़ती है, जिसका उत्तर वछड़े का आँ-आँ देता है—

अट्टालिकाएँ सोई हुई है—सडके सोई हुई हैं—हाट-बाजार सब पर नींद की हल्की छाया पड़ी हुई है—हाँ, हल्की ही, क्योंकि उषा के आगमन की धमक कुहेलिका की तहों को एक-एक कर दूर कर रही है—

इसी समय दूर से सुरीली आवाज सुनाई पड़ती है—वह पहले एक ही ध्वनि मालूम पड़ती है, किन्तु धीरे-धीरे वह ध्वनि, ध्वनि-समूह में बदल जाती है—अब स्पष्ट मालूम हो रहा है, कुछ कोकिल-कठी गानी हुई आ रही है—गीत की कड़िया क्रमशः स्पष्ट होती जा रही है—

बहुजन-हिताय,
बहुजन-सुखाय,

नर उठो, नारियो उठो, उठो
झाँकी यह झिलमिल स्वर्ण-किरण,
निद्रा खोने, तन्द्रा धोने—
बह चली पुलकमय मलय-पवन
सब उठो, जगो
निज कर्म लगो,
सपनों की दुनिया दूर जाय।

बहुजन-हिताय,
बहुजन-सुखाय.

दुनिया उभचुभकर डूब रही,
फैला आँसू का प्रलय-ज्वार
आहों की आँधी में उजड़ी
जाती मानवता की बहार
आगे बढ़कर
करुणा से भर
रच तो रक्षा के कुछ उपाय।

अम्बपाली :

बहुजन-हिताय

बहुजन-सुखाय,

हम सागर यदि न उलीच सकें

आँखों की दो बूँदें हर लें,

हम पर्वत उठा सकें न अगर,

बोझें दो सिर के कम कर दें,

अर्पित जीवन

अर्पित जन-धन

अर्पित होवे मन-वचन-काय,

बहुजन-हिताय,

बहुजन-सुखाय ।

अब यह मंडली बिल्कुल निकट आ चुकी—इधर आसमान में लाली ही लाली है—अंधकार धीरे-धीरे दूर हो चुका है—उदित होनेवाले सूरज की प्रभा के कारण या सामने आनेवाली कलकठियों की शान्त मूखाभा के कारण ?—अब हम स्पष्ट पहचान सकते हैं कि ये कौन हैं—सब की सब भिक्षुणियाँ हैं—टुकड़े-टुकड़े जोड़कर बनाये पीले वस्त्र से, गर्दन से पैर तक, इनके अंग ढके हैं—जिनके बाल कटा डाले गये हैं, ऐसे सिरों पर पीले रंग के ही छोटे-छोटे कपड़े, रुमाल की तरह, सिर के पीछे की ओर बँधे हैं—काले रंग के भिक्षा-पात्र हाथों में—

अगली पंक्ति में ये तीन भिक्षुणियाँ कौन हैं ?—जरा गौर से देखिए—बीच में है देवी पुष्पगंधा—उनकी दाहिनी ओर अम्बपाली—बाई ओर मधूलिका—हाँ, मधूलिका ही !—भिन्न अवस्थाएँ, भिन्न प्रकृतियाँ सिमटकर एक हो चली हैं—‘बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय’ के एक पथ पर, एक उद्देश्य पर !

सूरज की किरणें फूटी—पीले वस्त्रों के बीच अम्बपाली के शान्त मुखमंडल पर वे जा पड़ी—जा पड़ी, नृत्य कर उठी—फिर प्रतिफलित हुईं—अब अम्बपाली का मुखमंडल सूर्यमंडल-सा दिप रहा है—हाँ, साक्षात् सूर्यमंडल सा !—भिक्षुणियाँ गाये जा रही हैं—

बहुजन-हिताय,
बहुजन-सुखाय,

हम सागर यदि न उलीच सकें,
आँखों की दो बूँदें हर लें
हम पर्वत उठा सकें न अगर,
बोभे दो सिर के कम कर दें,
अपित जीवन
अपित जन-धन
अपित होवे मन-वचन-काय,

बहुजन-हिताय,
बहुजन-सुखाय ।

म मा त

